Chap-2

नवगीत की पहचान

प्रकृति परिवर्तनशील है, अर्थात् परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य नियम है । नया और पुराना दूर तक अपने राहपर चलते रहते हैं । तदनन्तर क्रमशः पुराना पीछे छूट जाता है और नया मुख्य किरदार निभाने लगता है । प्रायः ऐसा भी होता है कि, पुराना अस्तित्व में तो होता है किन्तु महत्वहीन होकर। काव्य-धारा में प्रवृत्तिगत परिवर्तन आकस्मिक नहीं होता बल्कि लम्बी अवधि तक युग और सामाजिक परिस्थिति तथा ऐतिहासिक आग्रह के परिणामस्वरूप विशेष सांचे में ढलकर होता है । परम्परा से पृथक नये सांचे में तात्कालिक समय-समाज की अभिव्यक्ति साहित्येतिहास में नवीन अभिधा ग्रहण करती है। इस अभिधा में रचनागत प्रवृत्तियां विद्यमान होती हैं । कविता अपने मूल सरोकार 'सामाजिक चेतना' की उत्प्रेरणा को सम्पूर्णता प्रदान करती हुई अपने व्यक्तित्व को समयानुसार बदलती रही है । रचना-व्यक्तित्व का यह बदलाव ही प्रवृत्ति के आधार पर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, व्यक्तिवादी-स्वच्छन्दतावाद तथा 'नयी कविता' संज्ञाओं से परिभाषित होता रहा है । 'नवगीत' इसी प्रक्रिया की नवीनतम कड़ी है ।

यद्यपि किसी भी रचना-प्रक्रिया के पहचान-बिन्दुओं को किसी भौतिक वस्तु की तरह विश्लेषित नहीं किया जा सकता, तथापि उसके सूक्ष्म रचना-विधान को कुछ गहरी रेखाओं द्वारा अवश्य समझा जा सकता है । यहां 'नवगीत' की पहचान के विभिन्न बिन्दुओं को रेखांकित किया जा रहा है जिनसे उसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है ।

पारम्परिक गीत और नवगीत :

'नवगीत' नवता और गीतत्व का संश्लिष्ट रूप है । 'नवता' उसके समयानुरूप परिवर्तन की परिचायक विशेषता है तथा 'गीत' उसका मूल काव्य-रूप । शब्द-व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'जिसे गाया गया है' वह

गीत है । 'गा', 'गातृ', 'गातु' आदि शब्दों का प्रयोग वैदिक साहित्य में गाने के अर्थ में हुआ, किन्तु अन्य साहित्यिक विधाओं की भांति गीत ने भी व्युत्पत्ति प्रक्रिया के साथ अनेक पारिभाषिक विशिष्टताओं को भी क्रमशः अर्जित किया है । गीत का आदिम रूप वैदिक ऋचाओं में मिलता है जो क्रमशः थेरी गाथाओं, मेघदूत, गीत-गोविन्द, नाथ व सिद्ध के पदों तथा विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरां आदि के पदों में निरन्तर विकास पाता रहा है । उसके स्वरूप में होने वाला क्रमागत परिवर्तन उसे नित्य नवगीतत्व प्रदान करता रहा है । पारम्परिक गीत की छन्द, टेक, अन्तरा सम्बन्धी सिर्फ उन विशेषताओं में ही बदलाव नहीं आया है जिनका गीत के शिल्प से सीधा सम्बन्ध समझा जाता है, बल्कि उन स्वीकृत मान्यताओं को भी नवगीत में एक नयी आकृति मिली है जिन्हें नवगीत की आधारभूत विशेषताओं के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त है ।

आत्मानुभूति, रागात्मकता, सहजता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता एवं प्रभावान्विति व तरलीकृत शैली 'गीत' के तत्व हैं । 'नवगीत' ने एक ओर तत्व-निर्धारण की इस रूढ़ि को अस्वीकार किया है और दूसरी ओर उपर्युक्त तत्वों में से जिन्हें ग्रहण किया है, उन्हें नया एवम् परिवर्तित सन्दर्भ प्रदान किया है । नवगीत ने ऐसा करके कुछ अनुचित नहीं किया है जिससे कि उसे काव्य-क्षेत्र से बहिष्कृत कर दिया जाये । गीत की इस दशा का स्पष्टीकरण करते हुए स्वर्गीय उमाकान्त मालवीय ने लिखा है - "कविता की पहचान के लिए, उसे रेखांकित या परिभाषित करने के लिए लोगों ने हर सीमा को नकार दिया, ताकि अपने द्वारा तथा अपने लोगों द्वारा रचे गये गद्य ही नहीं, रूक्ष गद्य को भी कविता कहा जा सके । लेकिन जब गीत की बात आती है तो संक्षिप्तता, भावनात्मक ऋजुता, वैयक्तिकता आदि तक उसे घोट देने की दूरभिसन्धि सिर उठाती है और गीत के प्रति हमारे शुभेच्छुओं का आग्रह-प्रेम जाग उठता है । क्यों नहीं हमारी आज की मानसिकता, सामाजिक परिवेश, व्यक्तित्व का दोगलापन, भूख, गरीबी, व्यंग्य-विपर्यय की स्थिति आदि नवगीत का कथ्य बन सकता और इस मुद्दे पर गीत की युगों पुरानी परिभाषा जो अब अपर्याप्त हो गई है, आड़े आती है ।"[१]

नवगीत ने निर्धारित परिभाषा की परिधि को निश्चय ही तोड़ा है और उसे नये शिल्पगत आयाम प्रदान किये हैं । इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन 'आत्मानुभूति' एवं 'वैयक्तिकता' को लेकर हुआ है । समीक्षा-शास्त्रीय शैली में आत्मानुभूति को गीत का आधारभूत तत्व माना गया है । नवगीत में वस्तुपरकता, व्यंग्य एवम् यथार्थ के आग्रह को पाकर एक सन्देह यह उभरा है कि नवगीत 'आत्मानुभूति' से एकदम शून्य है किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि 'नवगीत' में उसका स्वरूप पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है । अब गीत में आत्मानुभूति का अर्थ कवि के वैयक्तिक प्रेम की विरह-मिलन जैसी स्थितियों तक ही सीमित नहीं रह गया है और न ही वह उसके व्यक्तिगत सुख-दुःख का आख्यान भर है, अपितु नवगीत ने एक ओर जीवन की व्यापकतम अनुभूतियों को काव्य-विषय बनाया है, तो दूसरी तरफ 'मैं' के घेरे को तोड़कर उसे 'हम' तक विस्तार देने का भरसक प्रयत्न भी किया है ।

समष्टि के साथ नवगीत का तादात्म्य बौद्धिक न होकर अनुभूति जन्य है, यही तथ्य नवगीत को शिल्पगत नवीन आयाम देता है । नवगीत स्थितियों का द्रष्टा मात्र नहीं है, भोक्ता भी है, इसी कारण नवगीत में व्यक्त अनुभूति उसकी अपनी भी है और समष्टि की भी । समष्टि-चेतना की अभिव्यक्ति इसमें बनावटी न होकर कलात्मक है, यही वजह है कि इसमें साधारणीकरण की क्षमता अन्य सामयिक

काव्य-धाराओं से अधिक है । वैयक्तिक यन्त्रणा किस तरह पूरे युग की वेदना को मुखर करती है, इसके कई उदाहरण नवगीत में देखे जा सकते हैं -

"वासानाएं
जिन्दगी से भी बड़ी हैं,
प्यास बनकर
उम्र की छत पर खड़ी हैं,
तृप्ति के पथ पर
मरुस्थल सो गए हैं ।
पांव पीछे
लौट जाना चाहते हैं
लौटकर
धूनी रमाना चाहते हैं
विगत पथ पर
लोग कांटे बो गए हैं ।"[२]

या फिर -

"दिन पहाड़ - से
कल तक तिल थे
आज ताड़-से !
इतनी तेज धूप तो पहले
कभी नहीं थी,
गर्द बहुत पहले भी थी
पर इतनी गहरी
जमी नहीं थी
ऐसा क्या हो गया कि
घर, आंगन, चौराहा -
अपने-सपने
सब उजाड़-से !"[३]

स्पष्ट है कि 'आत्मानुभूति' की अभिव्यक्ति वाली यह शैली नवगीत को पारम्परिक गीत से पर्याप्त पृथक करती है । नवगीतकार ने शिल्प के क्षेत्र में स्वानुभूति को व्यापकता प्रदान करने का एक और रास्ता ढूंढ़ निकाला है । उसने प्रकृति को न केवल एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही दी है, बल्कि प्रकृति की घटनाओं, दृश्यों एवम् मौसम के परिवर्तन को तात्विक रूप में अपनी चेतना और युगबोध के साथ मिलाकर एक साथ कई आयामों में उसे व्यक्त भी किया है -

"अंधी हैं
जल की संज्ञाएं

बढ़ती ही जातीं
तृष्णाएं
रेतीले टीलों की बस्ती
शहर हुआ भीलों की बस्ती''[४]

आत्माभिव्यक्ति के सन्दर्भ में अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि पारम्परिक गीत में प्रासंगिकता को उपेक्षित कर दिया गया था । परिणामतः वह युग-बोध से शून्य उच्छ्‌वास मात्र की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा था । उच्छ्‌वास वैयक्तिक भी होता है, रोमांटिक एवम् वायवी भी । जबकि रागात्मकता से सम्पन्न शिल्पगत 'वस्तुपरकता' उसे एक ठोस़ जमीन देती है । यह 'वस्तुपरकता' नवगीत की अपनी अलग विशेषता है । ऐसा कर नवगीतकार ने वैयक्तिक अनुभूतियों की उपेक्षा नहीं की है -

''लपटों की शैया पर
सोयी वासवदत्ता
पद्‌मा की गंध खिली
दूर-दूर अलबत्ता
हम उज्जयिनी के उदयन हैं
नाटक के नायक हम हैं नहीं
अग्निहोत्र के हम ही होता हैं, हवि हैं
हम जलती ग्रीष्म की दुपहरी के कवि हैं ।''[५]

नवगीत में आकारपरक पूर्व निर्देशों एवम् परम्पराओं को स्वीकार करने की प्रवृत्ति नहीं है । अभिव्यक्ति की पूर्णता ही उसका मुख्य आदर्श रहा है । कवि की अपनी मानसिकता एवम् व्यक्तित्व का सम्बन्ध भी गीतों के आकार से रहा है । प्रत्येक नवगीतकार का 'स्वतन्त्र अस्तित्व' है जो दूसरे से अनुशासित हरगिज नहीं होना चाहता । यही कारण है कि इनके गीतों में दूर-दूर तक परस्पर सम्बन्ध नहीं दिखाई देता । नवगीत प्राचीन गीत-परम्परा के आगे की कड़ी है । युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में यह भले ही परम्परा विद्रोही हो गया है, किन्तु इसका मूल एवम् ठोस तन्तु प्राचीन परम्परा से समन्वित अवश्य है । नवगीत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि, उसने गीत को 'उपकरण' की अपेक्षा 'साध्य' की भूमिका के रूप में अपने आपमें समाविष्ट किया है, और उपकरणों ने नवगीत को परम्पराभंजक बनाकर हमारे समक्ष प्रस्तुत करने में अहम किरदार निभाया है ।

लोकगीत और नवगीत :

यह निर्विवाद सत्य है कि लोकगीतों का मूल ऋगवेद में विद्यमान है । विक्रम की तीसरी शताब्दी में प्राकृत भाषा में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है । प्राचीनतम संस्कृत-ग्रन्थों के मूल में भी इनकी धारा प्रवाहमान थी । सिद्ध कवियों ने भी लोकभाषा और लोक शैली में नवीन गीतों की रचना की, जिसमें विचार और दर्शन तो साहित्यिक अभिरुचि पर आधारित थे, किन्तु भाषा-शैली और लय लोकगीतों की थी । लोकगीतों की प्रभविष्णुता और उसका लयात्मक प्रसार प्राचीन समय से होता रहा है । भारतेन्दु और प्रसाद के युग में लोकगीतों की शैली को अपनी काव्य-रचनाओं में अनेक हिन्दी कवियों ने अपनाया

और लोकधुनों पर आधारित अनेक रचनाएं हिन्दी साहित्य को प्रदान कीं ।

लोक-साहित्य एक ओर तो मनुष्य को अतीत का स्मरण कराता है, वही दूसरी ओर उसे वर्तमान के सुख-दुःख से जोड़ता भी है । वह समाज के प्रति प्रतिबद्ध भी होता है और प्रासंगिक भी । वह प्राचीनतम होते हुए भी नवीनतम है । वर्तमान या आधुनिकता की चेतना किसी एक समय की चेतना से बंधकर नहीं चलती, वह अपने अतीत के सन्दर्भों से जुड़कर भविष्य की संभावनाओं पर निगाह रखती हुई चलती है । वह अपने समकालीन समाज की महत्ता और उपलब्धि का मूल्यांकन करती हुई अग्रसर होती है ।

लोकगीत कवि की सर्जना जाति और समुदाय की वस्तु बनकर अपनी मौलिकता के साथ उसमें समाहित हो जाती है, क्योंकि वह मौखिक वाङ्मय है जिसका कोई अन्त नहीं । बहुत सी साहित्यिक कृतियाँ भी लोक-गायक के कण्ठ में आकर लोकगीतों के रूप में ढल जाती हैं जिससे कि उनके मूल श्रोतों को ढूंढ़ निकालना अत्यन्त दुष्कर होता है । कभी-कभी तो जिह्वा पर फिसलते-फिसलते ये गीत इतने बदल जाते हैं कि उस गीत के मूल रचयिता स्वयं भी उसे नहीं पहचान सकते । 'लोकगीत' निरन्तर प्रवाहित गंगा की पवित्र धारा के सदृश हैं जिसमें कहां-कहां से क्या-क्या बह-बहकर मिलता रहता है, यह धारा राह में अपने पीछे न जाने क्या-क्या यहां-वहां छोड़ती जाती है, इसका मूल्यांकन सहज ही सम्भव नहीं, किन्तु यह स्थापित सत्य है कि जहां, जो कुछ वह छोड़ जाती है, वह कालांतर में वही की वस्तु बनकर रह जाती है ।

लोक का मूल तत्व हर उस व्यक्ति-चेतना में निहित होता है, जिसका अंतरंग प्रकृति के आदिम संस्कारों से लेकर आज तक के जीवन-सन्दर्भों के साथ जुड़ा हुआ है । 'लोक' शक्ति प्रवाहों से निरन्तर हिचकोरें लेने वाला ऐसा महासागर है जहां से अनेक आयामी मेघ-खण्ड वाष्पीकृत होकर कलाओं के विभिन्न क्षेत्रों को अभिसिंचित करते रहते हैं । किसी भी कला को निरन्तर नवीन और चिरजीवित रहने के लिए उसे लोक की शरणागति स्वीकार करनी पड़ती है । हमारे आधुनिक जीवन की जड़ें भी लोक से ही रसपान करके अपना संवर्धन और प्रतिकल्पन करती रही हैं । 'कविता' भी 'लोक' की शक्ति से ही निरन्तर नयी होती है । यह जब आदिम संस्कारों का संस्पर्श करती है, तब वह हमारी नवीन जीवन-पद्धति में भी जिस जातीय स्मृति का अविष्कार करने लगती है, यह कविता के श्रेष्ठतम पक्ष की उपलब्धि बनती है । जातीय स्मृतियों की यह प्रक्रिया विषय-वस्तु और भाषिक चेतना के स्तर पर होता है । हमारी समकालीन कविता की समस्त विधाओं पर 'लोक' का यह प्रभाव निरन्तर अंकित होता रहा है । 'नयी कविता' की अपेक्षा 'नवगीत' लोक के इस प्रभाव से अधिक मुखर है । नवगीत की ताज़गी और उसकी अनुभूतिप्रवणता लोकलय के कारण ही अधिक ऊर्जावान हुई है । लोक निरन्तर छन्द में जीता है क्योंकि लोक का सीधा सम्पर्क प्रकृति से है, और प्रकृति का अपना एक छन्द और लय है । यह छन्द और लय कभी नहीं विश्रृंखलित होता । इस विराट छन्द से ही लोक निस्सृत है, अतएव लोक-गति की भी वही धारा है जो प्रकृति की है । लोक का उत्सवरत, श्रमशील तथा करूणा और वेदनासिक्त मन छन्दहीन नहीं हो सकता । उसके पास जीवन की सहज लय है और उस लय से ही वह निरन्तर अनुप्राणित रहता है ।

दरअसल, कवि में जो लोक-संस्कारित अन्तश्चेतना विद्यमान हैं, वे कई पीढ़ियों से हस्तान्तरित होकर उसे प्राप्त हुई हैं। हिन्दी का कवि निम्न-मध्यम् वर्गीय जीवन की उपज है जिसके पौधे भले ही नगर में आकर पल्लवित और पुष्पित हुए, किन्तु इनका मूल श्रोत तो हजारों हजार वर्ष पूर्व के लोक में ही व्याप्त था, जहां से उसके पूर्वज उजड़कर नगरों की ओर चले आये थे। और जब-जब भी ये उसकी ओर लौटते हैं,. तब-तब इनकी कविता व्यापक बोध देने वाला रूप ग्रहण करती है। इस सन्दर्भ में आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी लिखते हैं - "वे हमारी पिछली पीढ़ी के पूर्वज थे, जिन्हें हम अच्छी तरह जानते और पहचानते हैं। उनमें अधिकतर साधारण श्रेणी के लोग थे जो गांवों से अभी-अभी आकर शहरों में रहने लगे थे।... ये शहर में रहते थे, पर इनके घर वाले गांवों में ही रहा करते थे और इनका मन भी अक्सर वहीं चला जाया करता था। इनपर अपने परिवार के भरण-पोषण का भार था, जिसे ये किसी तरह अपने नौकरी-धन्धे से पूरा करते थे। ये किसान भी थे, श्रमिक भी, और बाबू या सम्पादक जी भी।... ऐसे ही लोगों ने हमारी इस शताब्दी का साहित्यिक कार्य आरम्भ किया था।"[६]

छायावाद यद्यपि अभिजात संस्कारों को लेकर अस्तित्व में आया था, किन्तु निराला जैसे कवियों में शक्ति का जो सहज उद्दाम वेग प्रस्फुटित हुआ, वह लोक-संसिक्ति का ही परिणाम था। निराला के लघु गीतों, गज़लों आदि के भीतर से बैसवाड़ा झांकता है। उनके छन्द प्रयोगों में उत्तर प्रदेश के इस अंचल की लोक-रागिनियां निबद्ध हो उठती हैं। यहीं स्थिति पंडित माखन लाल चतुर्वेदी के काव्य में भी है। उनके अनेक गीत लोकरागों के सहज उच्छलन का परिणाम हैं। छायावादोत्तर काल में गीत-रचना की ओर प्रवृत्त होने वाले कवि 'बच्चन' ने ऐसे कई गीत लिखे हैं जिनमें लोक-लय के स्वाभाविक प्रयोग प्राप्त होते हैं। छायावादोत्तर काल में रचित प्रयोगवादी काव्य का ज्यादातर हिस्सा लोकलयों से अनुप्राणित है। मुक्त छन्द में लिखी गई कविताओं में भी लोक लय की छवियां यहां-वहां दिखाई पड़ जाती हैं। अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर व नरेश मेहता जैसे कवियों की रचनाओं में भी यह प्रवृत्ति यदा-कदा देखने को मिल जाती है। प्रयोगवाद के लगभग समानान्तर ही ठाकुर प्रसाद सिंह भी रचनारत थे, और जो गीत उन्होंने उस समय लिखे, उनमें बिहार का संथाल परगना ध्वनित हो रहा था। यह एक पृष्ठभूमि थी, जिस पर नवजात 'नवगीत' अपने छन्द प्रयोगों के वैविध्य का संस्कार प्राप्त कर रहा था।

लोक के सुदीर्घ जीवन काल में छन्द की दृष्टि से दो महत्वपूर्ण एवम् ऐतिहासिक परिवर्तन हुए हैं। 'लोकधुनों का शास्त्रीय लयों में परिवर्तन' तथा 'शास्त्रीय धुनों से लोकधुनों का पुनर्प्रतिपादन'। 'लोकगीत' की उत्पत्ति के मूल में अनेक कारण सक्रिय रहे हैं। श्रम आदि से निष्पन्न ध्वनियों का लोकलयों में अवगुण्ठन, इन कारणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। नाव चलाते, लकड़ी काटते, चक्की पीसते और हल चलाते हुए किसान-मजदूर के मांस-पेशियों के खिंचाव और तनाव आदि से निष्पन्न हुए स्वर भी लोक-लयों के अविष्कार की मूल इकाई हैं। प्रकृति और मनुष्य के सहजात सम्बन्धों के आधार पर भी लोकलयों के उत्पत्ति की बात की जाती है। ऋतुओं के परिवर्तन से प्रभावित लोक-चेतना ने जो सहज उल्लास और सहज विरक्ति में गाया, वह 'लोक-छन्द' बन गया। कृषि सम्बन्धी विभिन्न कर्मकाण्डों, फसलों के आगमन व उनकी गुड़ाई, कटाई आदि क्रियाकलापों और गतिविधियों

से भी लोक लयों की प्रतिस्थापना हुई है । ऐसे ही और भी कई कारण हैं जिनसे लोक-लय का संसार निर्मित हुआ ।

आदिम लोकलय सोलह मात्राओं के भीतर सिमटी हुई होती थीं । आदिवासी अंचलों के लोकगीतों के अध्ययन से इस तथ्य का पता चलता है कि, जो जितना अन्तवर्ती क्षेत्र है, उसकी उतनी ही संक्षिप्त और लघुकाय पंक्तियां थीं । विषय के विस्तार की स्थिति इन लोकगीतों में अत्यधिक कम है । लोकगीतों में एक ही ध्रुव-पंक्ति रहती है, जिसका बारम्बार आवर्तन लोकगीत के मध्य होता रहता है । ये लोकगीत कब शास्त्रीय धुनों में परिवर्तित हो गए; वह कौन-सा संक्रमण काल था जब लोकलय शास्त्रीय रागों के चक्र में बांधी जा रही थी; यह शोध का विषय है, जिसका खुलासा भविष्य के गर्भ में है । मध्यकाल में शास्त्रीय रागों की रचना हुई तब लोक ने शास्त्रीय रागों की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया । अपेक्षाकृत अधिक विकसित और मैदानी भूभागों के लोग अपनी रागों में शास्त्रीयता के संस्पर्शों को जीवित करने लगे । बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, पूर्वोत्तर प्रदेश, अवध और ब्रज के लोक ने जिन रागनियों का प्रस्तुतिकरण इस नये परिवर्तन में किया, वे शास्त्रीयता से ही निष्पन्न हुईं । फाग, कहरवा, दादरा, रसिया, विरहा, कजरी इत्यादि उत्तरणार्थी लोक-गीतों की रचनाएं हैं, जिनका आधार शास्त्रीय रागनियां ही हैं । इनका प्रयोग हिन्दी काव्य में निरन्तर होता रहा है । नवगीत में ये प्रयोग अधिक सार्थकता के साथ प्रस्तुत हो सके हैं -

"नहीं छूटते सूख गये पत्ते
खिजूर के
मैं भी प्रीत नहीं छोडूंगी
भूल यदि गये ।"[७]

या फिर -

"भइया को देती अंकवार
सखियों के रूंधे हुए बैन
प्रियतम संगबीती जो रैन
दोनों ही करते बेचैन
दो सुधी में सखि का है
जीना दुश्वार
भाभी को देती अंकवार ।"[८]

"गंगोत्री में पलना झूले
आगे चले बकइयां
भागीरथी घुटुरुवन डोले शैल-शिखर की छइयां !
छिन छिपती, छिन हौले किलके
छिन ताझां वह बोले,
अरबराय के गोड़ी काढ़ै,

ठमकत-ठमकत डोले,
घाटी-घाटी दही-दही कर चहके सोन-चिरइया !
पांवों पर पहुडाकर परबत गाये खंता-खइयां ।''[९]

इस प्रकार जहां अवध प्रदेश की लोकलय उमाकान्त मालवीय के गीतों में उलांचे भरती है, वही, बघेलखण्ड की लोक लय अनूप अशेष की रचनाओं में सहज रूप से सुन्दर एवम् संवेदन पूर्ण दृश्य बनकर प्रस्तुत होती है -

''फूली-पीली सरसों
ऐसा लगता
बिना तुम्हारे
हुए खेत में बरसों ।
भांटा फूल
रंग में बोरे
लहके अलसी क्यारी
ऊंचा डीह
पिपरहा घूरे
मसुरी ढीठ उतारी
मन में पाला
लगे अरहरी
सूरज छिपे मदरसों ।''[१०]

नवगीत का वस्तुतत्व लोकान्मुख तो है ही, उसकी भावुकता एवम् संवेदनशीलता भी लोकासक्त है । सम्पूर्ण लोक उसकी भाव-चेतना में अन्तर्निहित है । नवगीत की इस लोक-आसक्ति की स्पष्ट मनोवैज्ञानिक आधार पीठिका है । लोक-उत्सव, लोक-राग, लोक-विश्वास, प्रकृति एवम् लोकाचार के प्रति गहरी रागात्मकता नवगीत में विद्यमान है । वस्तुतः नवगीतकार एक सच्चे लोक-हृदय की पहचान है क्योंकि जिस लोक को वह व्यक्त करता है, उसमें उसका चित्त और मन अनुरंजित है । वह चाहे भी तो इसे छुपा नहीं सकता । इस कथन की पुष्टि में नवगीतकार श्याम सुन्दर दुबे का यह आत्मकथ्य उल्लेखनीय है - ''मेरे पास एक बहुत बड़ा संसार लोक के आदिम स्वभाव की संवेदनाओं से आकर ग्रहण करने वाला भी रहा है । बुन्देलखण्ड का लोक-हृदय इसीलिए अनायास मेरे गीतों में धड़कता रहा है - जातीय स्मृतियों के रूप में, कभी लोक-रागिनी कहरवा, राई फाग की टूटी-जुड़ी टटकी लय में, कभी बोली के सोंधे शाब्दिक परिवेश में, कभी जीवन की अंतरंगता में बसे तीज-त्यौहारों और व्यवहारों में ।''[११]

यद्यपि लोक-बोध से सम्पन्न नवगीकारों में ग्राम्यांचलिक चेतना लोक-गीतों की तरह अपने भरपूर प्रभाव के साथ अधिष्ठापित हुई है, तथापि लोक-बोध का आशय मात्र 'ग्राम्य-चेतना' तक ही सीमित नहीं है; 'लोक' एक व्यापक परिवेश प्राप्त अभिधा है, जो आंचलिक जन-जीवन की सीमाओं का उल्लंघन कर नगरों व महानगरीय इकाईयों तक परिव्याप्त है । वैसे भी, नगर व ग्रामीण जीवन के भौतिक परिवेश

में अन्तर अवश्य है, किन्तु नागरिकों के संस्कारों, उनकी जीवन-दृष्टि, रूढ़ि और अज्ञानता एक-सी है। जीवन की विसंगतियां, विद्रूपताएं और सामाजिक मान्यताएं एक-सी हैं । इसलिए 'नवगीत' का चरित नायक केवल ग्रामीण ही नहीं, वह शहर में भी विद्यमान है । गांवों में पारम्परिक जीवन-मूल्यों पर आधारित संयुक्त परिवार के बिखराव तथा शहर में व्याप्त स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों के एहसास के बावजूद 'लोकबोध' से युक्त कवि-मन अपनी सर्जना में सम्बन्धों की स्मृतियों का एक समूचा लोक लेकर उपस्थित होता है । उनकी रचनाओं में बार-बार सामूहिकता और सामूहिक मुक्ति का भाव वर्तमान मिलता है। कदाचिद् इसी कारण शहर में रहते हुए भी वह अपने घर-परिवार की निर्धनता, परिवारजनों की बीमारी, उनके अभावों तथा ग्रामवासियों की कुशल क्षेम को विस्मृत नहीं कर पाता ।

संक्षिप्त में यहां यह कहना प्रासंगिक है कि, जो नवगीतकार, जिस लोकअंचल से सम्बद्ध रहा है, वहां के आंचलिक संस्कारों की धड़कनें उसी लोकलय में उनके हृदय एवम् अन्तर्मन में प्रतिध्वनित होती रही हैं और उन लोक-लयों के व्यापक प्रयोग उन्होने नवगीत की जमीन पर ही किये हैं ।

जनवादी गीत और नवगीत :

जनवाद के मूल में विद्यमान 'जन' शब्द पर्याप्त प्राचीन है । भारतीय वाङ्मय में जनपद जन की प्रतिष्ठा काफी पुराने समय से चली आ रही है । यह शब्द समूहवाची है । जनवाद के लिए हम कह सकते हैं कि यह कला, साहित्य, और जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण है, जो जन सामान्य को महत्व देता है । किन्तु यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक है । जनवाद जिस विशिष्ट अर्थ में आज हमारी साहित्य-समीक्षा में प्रयुक्त होता रहा है, वह हाल की ही बात है तथा उसके विकास का एक मनोरंजक इतिहास भी है ।

साहित्य और कला में आज जनवाद जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसके पीछे एक विशिष्ट दर्शन है । साहित्य की जो मार्क्सवादी विवेचना हुई, उसी से जनवाद का प्रादुर्भाव हुआ । "रूसी क्रान्ति के पश्चात संकीर्ण मार्क्सवाद ने 'प्रोलेटकल्ट' तथा 'ऑनगार्ड' जैसी साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना कर साहित्य में मार्क्स के वर्ग-संघर्ष को पूर्णरूपेण लागू करने पर जोर देते हुए सर्वहारा-साहित्य की मांग की । इन 'कुत्सित समाज शास्त्रियों' का बोलबाला लगभग सन् १९३२ ई. तक रहा । बाद में मैक्सिम गोर्की प्रभृति कलाकारों की आवाज पर इन संस्थाओं को भंग करके 'सोवियत लेखक संघ' की स्थापना की गई तथा 'सामाजिक यथार्थवाद' नामक एक ठोस, इतिहास सम्मत तथा क्रान्तिकारी पहलुओं वाला व्यापक जीवन दर्शन लेखकों के सामने रखा गया । मार्क्सवादी विचार-धारा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ सामाजिक यथार्थवाद को अभिव्यक्ति देने वाले साहित्य का भी प्रचार-प्रसार तीव्र हुआ और उस समय ऐसे साहित्य को 'प्रगतिशील साहित्य' (Progressive Literature) कहा गया। भारत वर्ष में भी यह विचार धारा आयी और १९३६ ई. प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई किन्तु यहाँ भी रूस की तरह साहित्यिक क्षेत्र में एक लम्बी अवधि तक पर्याप्त खींचातानी और संकीर्णता चलती रही । द्वितीय विश्वयुद्ध ने विश्व समुदाय के जन-साधारण को झकझोर कर रख दिया । परिणामतः एक प्रकार की राजनीतिक चेतना सम्पूर्ण विश्व में जागृत हुई और जन-सामान्य का महत्व अत्यधिक बढ़ा। इस प्रकार ऐतिहासिक स्थिति ऐसी हो गई कि जिसमें जनवाद एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया,

पर हमारे साहित्य-विवेचन में 'जनवाद' कम्युनिस्ट स्रोतों से ही आया है ।"[१२]

मार्क्सवाद पोषित इस जनवादी विचारधारा के अनुसार साहित्य में मनुष्य के सामूहिक भावों की ही अभिव्यक्ति होनी चाहिए । लेखक या कवि में शक्ति जनता से आती है, जनता के साथ उसका सम्बन्ध जितना ही घनिष्ठ होता है, उसमें उतनी ही रचना-शक्ति आती है और उसकी रचना में उतना ही सौन्दर्य बढ़ता है । साहित्यकार को निश्चय ही जनता का पक्षधर होना चाहिए । इन सामूहिक भावों पर भी युग का नियंत्रण होता है । परन्तु प्रत्येक युग मे भविष्य के बीज भी विद्यमान रहते हैं । उसमें विरोधों का निरन्तर संघर्ष चलता है । सच्चे कलाकार की प्रतिभा और अन्तर्दृष्टि उन तत्वों का दर्शन कर लेती है, जो कि सामूहिक भावों में ही अन्तर्भूत रहते हैं ।

जनवादी विचारधारा के अनुसार- 'साहित्य' आर्थिक परिस्थितियों से नियमित होता है, लेकिन उनका सीधा प्रतिबिम्ब नहीं है, उसकी अपनी सापेक्ष स्वाधीनता है । साहित्य के सभी तत्व समान रूप से परिवर्तनशील नहीं है । इन्द्रियबोध की अपेक्षा भाव और भावों की अपेक्षा विचार अधिक परिवर्तनशील होते हैं । दो विभिन्न युगों में अपने अभ्युदय और ह्रास की विभिन्न परिस्थितियों में एक ही वर्ग दो तरह के साहित्य का पोषण करता है । सचेत और संवेदनशील रचनाकार या लेखक सामाजिक विकास की समस्याओं के प्रति उदासीन न रहकर शान्ति, स्वाधीनता, जनतन्त्र और जातीय संस्कृति के लिए संघर्ष करते हैं । "जनवादी रचनाकार वर्ण्य विषय की तरह शैली और भाषा को भी जनवादी बनाने का आग्रह रखता है । चमत्कारिक और अतिशयोक्तिपरक शैली का वह विरोधी होता है । वह जनवादी साहित्य की भाषा को सरल और प्रवाहपूर्ण बनाना चाहता है । उसमें अलंकरण और कलाबाजी के स्थान पर 'अनुभूति' पर अधिक बल दिया जाता है । अत्यधिक कोमलता और मिठास को वह ह्रासजन्य मानता है । परन्तु घटनाओं का सूखा वर्णन भी उसे अभिप्रेत नहीं । बल्कि उसके अनुसार उनके अन्तस्तल में प्रवाहित जीवनी शक्ति का विकासमान रूप ही चित्रित होना चाहिए । कलाकार का कार्य उस शक्ति का अनावरण करना है । सौन्दर्य का स्रोत वह वास्तविकता को मानता है, और वास्तविकता का यह बोध अपनी सामयिक समस्याओं में भाग लेने से आता है ।"[१३]

मार्क्सवादी समीक्षा में यों तो प्रत्येक युग के श्रेष्ठ रचनाकार और रचना को जनवादी माना गया है, चाहे वे वाल्मीकि, महर्षि व्यास और कालिदास हों या कबीर, सूर, तुलसी, या मीरां हों । आधुनिक काल में जनवादी धारा के प्रारम्भकर्ता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हैं । प्रसाद, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल ने उसे आगे बढ़ाया और आधुनिक काल के जनवादियों में से कुछ प्रमुख नाम हैं- निराला, वृन्दावन लाल वर्मा, यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त, रांगेय राघव तथा राहुल सांस्कृत्यायन । वैसे, किसी समय सुमित्रानन्दन पन्त और नरेन्द्र शर्मा जैसे साहित्यकार भी जनवादी थे ।

जनवादी गीत की जमीन आम आदमी के पैर के नीचे की जमीन है, यह उस टूटे हुए और हारे हुए सर्वहारा वर्ग की पीड़ा का गीत है जिसमें नैराश्य है, टूटन है, थकावट है, प्रमाद है, नीरसता है, बोझिलता है, खीझ है, उदासीनता है, दर्द है, तकलीफ है, पीड़ा है, छटपटाहट है, आक्रोश है, उद्वेग है, इन्कलाब है, आवेश है, समझदारी है, सोच है, और एक अथक लड़ाई की शुरूआत है।

जनवाद का अर्थ ही लोकपरक है । प्रारम्भ में जनवाद देहाती संस्कारों से सम्पन्न रहा है किन्तु बाद में शोषित, दमित, संत्रस्त और हारे हुए आदमी के हाथ में एक हथियार के रूप में यह आया और फिर इसे अपने-अपने ढंग से चलाने का प्रयत्न किया गया । जब तक जनवादी गीत आम आदमी की पहिचान बना रहा, तब तक वह मानवीय संवेदनाओं के गहनतम विकारों से सम्पृक्त रहा किन्तु कालान्तर में जब श्रमजीवियों के कंधों पर बन्दूक रख कर गोलियां चलाने वाले बिचौलियों ने या व्यावसायिक दलालों ने इसे छुआ, तब से यह एक लादा हुआ भीड़ का नारा बन गया । हंसिया और हथौड़ा इसके प्रतीक बन गये और सतत संघर्ष ही इसकी रचनात्मक भूमिका बन गई । पूंजीवाद और साम्राज्यवाद की इजाराशाही, वर्जुआ संस्कारों का आरोपण और रूढ़ संस्कृति का निबन्धन इन्हें स्वीकार्य नहीं था। इन सबके सामने वह ईमानदारी की कसम खाता हुआ अपने-अपने लोगों के अधिकारों की सुरक्षा में रत रहकर वह शस्त्र उठा लेता है । यही शस्त्र-सज्जित उसका रूप जनवाद की पहली क्रान्ति-यात्रा रही है ।

'जनवाद का जन्म कब हुआ ? या नवगीत का जन्म कब हुआ ?' ये प्रश्न वास्तव में बेमानी हैं क्योंकि लोकसम्पृक्त साहित्य के सृजन की कोई निश्चित तिथि नहीं होती । अंशतः इसका प्रभाव कमोबेश कुछ-न-कुछ सर्वत्र आभासित होता है । हिन्दी काव्य में छायावादोत्तर युग के प्रगतिशील दौर में जनवाद शब्द सुनाई पड़ने लगा था । किन्तु नयी कविता के समानान्तर यह शब्द कुछ ज्यादा जोर पकड़ने लगा था, विशेषकर मुक्तिबोध के बाद जनवाद की जितनी चर्चा और व्याख्या सामने आई, उतनी उसके पहले कभी नहीं हुई थी । एक तरफ अज्ञेय के नेतृत्व में कथित तौर पर अस्तित्ववादी रुझान की कविताएं लिखी जा रही थीं, दूसरी ओर उतनी ही गति और जोर-शोर से जनवादी रचनाएं प्रकाश में आने लगी थीं । किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि, जनवादी काव्य किसी अन्य काव्य-धारा की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रकाश में आया बल्कि इसका आशय मात्र साहित्य में जनवादी शब्द के प्रचार-प्रसार के कालबोध से है । जनवाद सामान्यतः मार्क्सवाद प्रेरित साहित्य है, जिसका मूल आधार भौतिक दर्शन पर टिका हुआ है ।

प्रतिष्ठित नवगीत समीक्षक डा. सत्येन्द्र शर्मा जनवादी कवियों की रचनाधर्मिता के संदर्भ में लिखते हैं कि, 'जनवादी रचनाकार जन सामान्य की जिन्दगी से जितना गहन सरोकार रखता है, उसकी अनुभूति उतनी वैविध्यपूर्ण प्रामाणिक और निरन्तर नवीन छन्द विन्यास में ढलने के लिए प्रयत्नशील रहती है।' वर्तमान महानगरीय परिवेश की आपाधापी और तनावमय व्यस्त जिन्दगी के बीच प्यार करने और रामायण बांचने की पिपासा जिन्दगी को ही नये सिरे से बांचने के लिए प्रेरित करती है -

"प्यार
माथे का पसीना
पोंछने के बाद की सांसें
एक रामायन
जिसे फुरसत मिले तो
देर तक बांचे ।"[१५]

यह भी कहा जाता है कि, "जनवादी रचनाकार क्राफ्ट के मामले में बिल्कुल नया और अभूतपूर्व रवैया अख्तियार करता है, और संभव है कि अच्छी-से-अच्छी पहल भी बदली स्थिति में छोड़ देनी पड़े ।"[१६] जो लोग नवगीत को कोमलतम भावनाओं मात्र की अभिव्यक्ति या अतीत का गान कहते हैं, जिनका निष्कर्ष है कि, नवगीत में आधुनिक युग की विषमताओं, चुनौतियों, अन्तर्विरोधों और जटिलताओं को व्यक्त नहीं किया जा सकता, वे निराधार हैं । इसकी पुष्टि उन्हें जनवादी नवगीतकारों की रचनाओं के अध्ययन से प्राप्त हो सकती है ।

आम बोल-चाल की भाषा में रमेश रंजक जनवादी चेतना को विशेष काव्य-सौन्दर्य से मंडित करने का प्रयास किया है -

"वे पल
थमे जल-से थमे
रचे जैसे
बिम्ब दर्पण में रखे
वे पल
पांव के बल खड़े थे वे
नहीं छल के बल
बो गये सारे बदन में
भुर भुरी हलचल
गीत थे शायद अजनमे
समय पर जनमे
वे पल ।"[१७]

आक्रोश, व्यंग्य और आह्वान का त्रिकोण नवगीतकार की सुस्पष्ट समझ के साथ ही साथ उसकी पक्षधरता का भी द्योतक है । वह पूर्णतः जनसाधारण के साथ है । वह बेहद तकलीफ के साथ देखता है कि, आर्थिक अभावों का ठंडापन त्यौहार आदि की उष्मा को आभासने का अवसर नहीं देता -

"पोत सफेदी अथक
कोठरी पर काजल की
दो बच्चों की दो गंजी लेकर घर आये
चढ़ा चटक सतरंग
क्रूर कोठी पर छल की
कैसे मकई खील-खांज में बदली
वे क्या जाने ?
आंचल फाड़ बनाये वनिहर
जोत जगाते हैं ।"[१८]

अभावग्रस्त और आतंकग्रस्त जीवन को देखकर ही डॉ. विनोद निगम लिखते हैं -

> "सर पर तपती टीन,
> पांव हैं दहके पत्थर में
> रोटी मुझे खीच लाई है
> इस जलते घर में,
> एक खुशनुमा आंगन से,
> मैं आया था चलकर
> सांसों में थे, फूल हवा खुशबू के हस्ताक्षर
> दृग में थी भाषा चन्दन की, वंशी कानों में
> एक नदी बहती थी मुझमें, एक मुझे छूकर
> घुटन, पसीना, हांफ रहे क्षण
> धुआं खिड़कियों भर
> अब तो यही कहानी है
> इस झुलसे छप्पर में ।"[१९]

अपनी बदली मानसिकता के परिणामस्वरूप और 'नवगीत' को प्रासंगिक बनाने की कोशिश में गीतकारों ने 'जनसाधारण' के अभाव, कष्ट एवं असहाय जीवन को रेखांकित किया है । यथास्थिति के विरुद्ध जनसाधारण के संघर्ष और विद्रोह को भी इन रचनाओं में स्वर मिला है । इस प्रकार वर्तमान गीतों की जनधर्मिता के तीन प्रमुख आयाम सामने आते हैं - 'शोषित वर्ग की पक्षधरता', 'व्यवस्था के प्रति असंतोष' तथा 'यथास्थितिवादी शक्तियों के प्रति विद्रोह । ये तीनों आयाम गीत से संश्लिष्ट रूप में उभरे हैं । 'नवगीत' का कैनवास बहुत विस्तृत है । उसमें मध्यमवर्गीय सुख-दुःख प्राकृतिक सौन्दर्य से लेकर 'जनसामान्य' के जीवन-संघर्ष तक के सतरंगी चित्र उपलब्ध हैं, किन्तु हाल में जन-संपृक्ति में वृद्धि हुई है । रमेश रंजक, गुलाब सिंह, अश्वघोष, विद्यानन्दन राजीव आदि की बहुत सी रचनाओं में भूख, श्रम और विवशता का समीकरण हल करने में असफल, असहाय जन समुदाय का जीवन उभर कर सामने आया है । रमेश रंजक ने ग्राम्यांचल की दुर्दशा एवं त्रासदी को वहीं की लोकभाषा, बोली एवं कहने की पद्धति के माध्यम से बहुत प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति दी है । गीत संग्रह 'इतिहास दुबारा लिखो' में संकलित लोकगीतनुमा गीत अपने ढंग के अकेले हैं । कभी प्राकृतिक आपदाएं, तो कभी व्यवस्था की दयनीयता ग्रामीण श्रमजीवियों-किसानों का जीना मुश्किल कर देती हैं । होली, दीपावली आदि त्यौहार इनके लिए कोई माइने नहीं रखते । रमेश रंजक ने किसानों के प्रति संवेदना एवं आत्मीयता व्यक्त करते हुए लिखा है -

> "बैल मरो है जब से झुनिया के बाप को जी
> कुरता बनो नाँहि, बहिना पूरे नाप को जी
> ऐसी कोई सीवेगो
> हम्बे कोई बीतेगो ऐसेई फाग
> अब न परिंगे, झूला बैरी बाग में जी ।"[२०]

जनवादी गीत एवं नवगीत में एक साम्यता यह भी है कि, इनमें जनसामान्य के संकट व उसकी विवशता को सिर्फ ग्राम्य-जीवन के सन्दर्भ में नहीं देखा गया है, अपितु नगर-महानगर के यथार्थ का भी यह एक अनिवार्य अंग है । गीतकार पाता है कि जो पांव धूप में ठंडे रहते थे, महानगर में जूतों में भी जल जाते हैं, ऐसे में अनायास ही उसे अपने गांव की याद आने लगती है और वह यादों के गांव में फिर से गुनगुनाने लगता है -

"गीतों के गांव चले आये
हम नंगे पांव चले आये
सड़कें थीं, सड़कों में घर थे,
कोलाहल से भरे सफर थे,
हम थे सूखे वृक्षों जैसे,
जंगल से जल रहे शहर थे,
छोड़ सुलगते सवाल सारे,
सारे रख सम्बन्ध किनारे ।
अपनी चौपाल चले आये
बेबस, बेहाल चले आये ।"[२१]

दूसरी ओर पूंजीपति और सामन्ती वर्ग जिस तरह फल-फूल रहा है, वह भूखों, पेटों को गुस्सा दिलाने के लिए पर्याप्त है । आर्थिक विषमता की गहरी खाईं को अश्वघोष ने लोकजीवन की कथन-पद्धति के माध्यम से बखूबी आंका है -

"इकड़म-तिकड़म बम्बे बो

उनके बंगले पूरे सौ

उनके घर सड़ता है खाना

हमको मुश्किल अन्न जुटाना

आदमखोर इरादे देकर

वे हँसते हैं हो-हो-हो ।"[२२]

कोढ़ में खाज़ यह है कि सरमायेदारों से नियन्त्रित जनतांत्रिक व्यवस्था उक्त वर्ग-वैषम्य को और भी उत्प्रेरित करती है । जन-असंतोष एवं उससे उत्पन्न विद्रोह को हर तरह से दबाया जाता है । आम आदमी के विद्रोह का जवाब लाठी और गोली है । कभी-कभी तीव्र जनाक्रोश को लक्ष्य करके बाहरी तौर पर दमन तन्त्र और नरम होने का भ्रम पैदा करता है । इसका मतलब यह है कि शोषक-वर्ग खासा शातिर हो चला है ।[२२]

सम्पूर्ण परिदृश्य से गुजरते हुए अगर रचनाकार वर्ग-संघर्ष का आह्वान करता है तो यह आस्वाभिक एवं असंगत नहीं है । वह अहिंसात्मक एवं रक्षात्मक संघर्ष की बात नहीं करता । वह आक्रमक एक

जुट संघर्ष की बात करता है। गीतकवि हरीश भादानी इस संघर्ष में मजदूर के साथ मासजीवी को भी शामिल करते हुए कहते हैं -

"बोल मजूरे हल्ला बोल
बोल दीजियो हल्ला बोल
जांच गए मरजी के दरजी
कैंची से कानून-विधान ।.....
बोल कलमिए हल्ला बोल ।"[२४]

एक ओर जहां हरीश भादानी बहुत सीधे ढंग से व्यवस्था के प्रति विद्रोह की आवाज बुलन्द करते हैं, वहीं दूसरे ओर कुछ गीतकार संकेतों व प्रतीकों के सहारे अपना कार्य पूर्ण करते हैं, किन्तु इनके प्रतीक या संकेत अस्पष्ट या उलझे हुए नहीं हैं। गीतकार अमर नाथ श्रीवास्तव अपने निम्न नवगीत-पंक्तियों में प्रतीकों के माध्यम से अपनी संवेदना को जन-सामान्य की संवेदना बनाकर उसे अत्यन्त सहज रूप में प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं -

"मेरी सीमा में हैं जिनको
मैं न कहूं तो कौन कहेगा
लहरों के अनुकूल रहा जो
वह प्रतिमान बना देता है
यह प्रवाह निर्जीव देह को -
भी गतिमान बना देता है
उल्टी धारा दिशा हमारी
मैं न बहूँ तो कौन बहेगा ।
पीतल मुझसे रंग मांगकर
बजा रहा वैभव का डंका
विचर रहे है कंचन के मृग
खड़ी हुई सोने की लंका
आग मुझे चेहरा देती है
मैं न दहूं तो कौन दहेगा ।"[२५]

या फिर डॉ. विष्णु विराट की इन नवगीत पंक्तियों को देखें, जिनमें जन-साधारण के तहस-नहस जीवन को, दर्द और संवेदना को अत्यन्त सजीवता से रेखांकित किया गया है -

"एक नीली आंख का पाकर इशारा
आंधियों ने
फिर उखाड़ी बस्तियां ॥
खेत रूँधे
खूब खुल खलिहान खूंदे,

बैल भागे बनचरों से जुड़ गए ।
थरथराई झोंपड़ी
कच्चे घरों की रह गईं दीवाल
छप्पर उड़ गए ।
फिर उफनने लग गया
पानी नदी का,
फिर किनारे बँधी डूबी कश्तियां ।।"२६

गीत-परिधि के अन्तर्गत जन-असन्तोष और जन-संघर्ष की अभिव्यक्ति प्रायः प्रतीकों के माध्यम से हुई है । आज व्यवस्था-विरोध के तेवर से सुसज्जित होकर गीत, 'नवगीत' बनने की प्रक्रिया में है । आज का गीतकार यह समझ गया है कि उसके गीत की सार्थकता सामान्य-जन के जुड़ाव से ही है -

"मेरा गीत न गा पाया यदि दर्द आदमी का ।
अगर नहीं कर पाया थके पसीने का टीका
भाषा बोल न पाया हारी थकी झुर्रियों की
लाख मिले मुझको बाजारू गीत
कुछ नहीं ।"२७

बिम्बों और प्रतीकों के कारण गीत की स्वायत्तता और कला अक्षुण्ण रही है, लेकिन यह ध्यातव्य है कि यहां 'बिम्ब' अधिक जटिल और 'प्रतीक' बहुत दुरूह नहीं है । यथार्थ-बोध कुछ इस तरह से अभिव्यक्त हुआ है कि गीत के सामान्य पाठकों को अर्थ-ग्रहण करने में असुविधा नहीं होती । विद्यानन्दन राजीव की निम्न नवगीत-पंक्तियों में आम आदमी की दैनन्दिनी अपनी समूची पीड़ा और संवेदना के साथ उभरकर प्रस्तुत हुई है -

"भटकावों को दिशा
सोच को
पंख दिये ऋतु ने !
बदहाली टूटे छप्पर से
बूंद-बूंद रिसती,
आगत की चिन्ता
मजदूरी का दामन कसती,
तड़ित-पात, जल-प्लावन वाले
दिवस जिये ऋतु ने ।"२८

प्रकृति चित्रों में भी 'घायल' और 'स्याह' जीवन-सन्दर्भ छिपाये नहीं छिपते, वे किसी न किसी तरह अनायास ही उद्‌भाषित हो जाते हैं ।

अश्वघोष ने आज के ग्राम्यांचलिक परिवेश को रेखांकित करने के लिए अम्मा के खत का आश्रय लिया है -

"पिछले बरस विकट वर्षा में
बैठ गया औसारा
छप्पर के नीचे ही रहता
अब परिवार हमारा
तुम्हीं बताओ, जायें कहां हम
अपने ठैया-ठाँव से ।
बहुत दिनों के बाद मिला है
अम्मा का खत गांव से ।"[२९]

यहां कुछ आंचलिक शब्दों के प्रयोग से, और पत्र की आत्मीय शैली में यथार्थ की सिक्तता और प्रखरता के साथ अभिव्यंजित हुई है । जनधर्मी गीतों में लोकधुनों और जन साधारण के लिए परिचित शैलियों का प्रयोग उन्हें जनप्रिय बनाये रखता है । राजेन्द्र प्रसाद सिंह और रमेश रंजक ने सोहर, परिछन, रसिया को आधार बनाकर कई गीत लिखे हैं । इन गीतों में परिपक्वता है, स्पष्ट नज़रिया है, और बदलाव की चेतना है ।

जनवादी गीतकारों की प्रतिबद्धता पूंजीवाद स्थापित अल्पसंख्यक जनतन्त्र के विरुद्ध ऐसे बहुसंख्यक सर्वहारा वर्ग के प्रति है जिसकी जीवन-गाथा शोषण पर आधारित है । वे आर्थिक व रंग आदि के आधार पर रचे गए श्रेणीगत भेद भाव को एक अमानवीय तंत्र का अंग मानते हैं किन्तु इस शोषण आधारित आर्थिक साम्राज्य शाही का विनाश करने के लिए कविता मात्र को असरदार माध्यम नहीं मानते । अपितु वे इस माध्यम का उपयोग जन-चेतना जगाने और जन-जीवन से अटूट और गहरा रिश्ता जोड़ने में मानते हैं । उनकी रचनाओं में उनके आस-पास के वातावरण, स्थानीय समस्याओं और विभिन्न गतिविधियों एवं संस्कृति आदि का चित्रण उस जमीन की बोली-भाषा में रूपायित दिखाई देता है ।

"वक्त तलाशी लेगा
वह भी चढ़े बुढ़ापे में
संभलकर चल
कोई भी सामान न रखना
जाना-पहचाना
किसी शत्रु का किसी मित्र का
ढंग न अपनाना
अपनी छोटी सी जमीन पर
अपनी उगा फसल ।"[३०]

''नवगीतकार की रचनात्मकता का वैशिष्ट्य अनुभव की 'समृद्धि' है । वे अपनी रचनाओं में वैचारिक निष्ठा को आरोपित नहीं करते, बल्कि ज़िन्दगी के मध्य से उत्पन्न अहसास उनकी संवेदना की गरमी में तपकर और वैचारिक धार में चढ़कर अभिव्यक्त होता है, कदाचिद् इसी कारण रमेश रंजक के गीतों में निपट ताजगी मिलती रहती है ।''[३१] जनवादी नवगीतकार की रचनाओं में जीवनानुभूतियों का यथार्थ इसलिए अभिव्यक्त होता है, क्योंकि, उसे मालुम है कि कोरे चमत्कारपूर्ण लबादों ने उसका दम घोट दिया है, इसलिए वह गीत मुक्त होना चाहता है, और चाहता है, नये परिधान में नयी जमीन पर खड़ा होना जिससे उसे युग की पीड़ा के प्रस्तुतीकरण का आनन्द प्राप्त हो सके । चूंकि इस तरह के गीत जनसाधारण के सुख, दुःख, आकांक्षा, हताशा, आदि से जुड़े हैं, अतः बतौर सरलीकरण किये उन्हें जनवादी कह दिया जाता है । जनवाद की व्याख्या करते हुए शिवदान सिंह चौहान ने लिखा था कि, 'यह डेमोक्रेसी का पर्याय है, यह एक और सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक, क्षेत्रों में समानता, न्याय और सहयोग के आधार पर व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों का नियमन करने वाली व्यवस्था है और दूसरी ओर विश्व-बंधुत्व की एक उच्चतर नैतिक भावना ।' आज के कुछ आलोचक, और आगे बढ़कर जनवाद को वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध विचारधारा मानते हैं । कुछ गीतकार निश्चय ही जनतांत्रिक अधिकारों और नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए पूंजीवादी मानसिकता से लड़ते दिखाई देते हैं ।

लोक-संस्कृति और लोक-जीवन से प्रत्यक्ष जुड़ने के कारण नवगीत के अन्दर भारत के सामान्य जन की सही तस्वीर के साथ उसके राग, सौन्दर्य, बोध, आशाएं और आकांक्षाएं हैं । ''आज मार्क्स के सिद्धान्तों में कस कर जो जनवादी गीत ढाले जा रहे हैं, वे नवगीत से अलग नहीं हैं । नवगीत में पक्षधरता केवल जन की ही है । जितने भी प्रतिष्ठित नवगीतकार है, उनकी सामान्य-जन के प्रति रुझान स्पष्ट है, लेकिन वे गीत में राजनीतिक मतवाद को उठाने के कायल नहीं हैं ।''[३२]

छायावादी गीत और नवगीत :

बेशक, जिन मान्यताओं के आधार पर हमारे प्राचीन आचार्यों ने गीत को परिभाषित किया था, छायावादी गीत उनसे बहुत अलग है । युगीन सन्दर्भ में ऐसे ही, छायावादी गीत और नवगीत में भी अन्तर स्थापित हुआ है । नवगीतों में न तो छायावादी कल्पना लोक की रमणीयता है, और न ही आध्यात्मिक रहस्य का भाव-बोध । छायावादी गीतों का सृजन-वैभव मूलतः भारतीय क्रम और पाश्चात्य 'लिरिक' परम्परा की अनुकृति अधिक था । नवगीत अपनी ज़मीन पर खड़ा होकर उसकी गन्ध को गुनगुनाता हुआ छायावादी रोमानियत और लिजलिजेपन से हटकर यथार्थ को उपस्थित करता है । शायद इसी कारण नवगीत की भाषा में छायावादी अभिजात्य नहीं है, बल्कि सहज, स्वाभाविक सामान्य युग-सन्दर्भ की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है । नवगीत में 'आत्मसत्य' की अपेक्षा 'लोकसत्य' के गीत-धर्म की परिकल्पना है । प्रतिपाद्य या वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी दोनों में कोई साम्य नहीं दिखाई पड़ता । 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' करनेवाले छायावादी कवियों के गीतों में मानव-हृदय की सूक्ष्मतम अनुभूतियों का चित्रांकन है, जबकि नवगीत-कवि ने अपनी रचनाओं में 'लोक सत्य' की स्थूलता का उद्घाटन करते हुए आध्यात्मिकता के तिलस्म को भंग करने का सफल प्रयत्न किया है । उसने 'प्रणय' को जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में तथा सुखद गृहस्थ जीवन के प्रतीक-

रूप में ग्रहण कर 'सामाजिक कवच' सदृश चित्रित किया है । छायावादी कवियों की चित्रवृत्ति 'जीवन से पलायन' की है, किन्तु नवगीतकारों ने अपने गीतों में 'जीवन-संघर्ष' को चुनौती के रूप में स्वीकार किया है । कदाचिद् रागात्मक चेतना के प्रतीक-गीतों को बौद्धिकता का धरातल पहली बार नवगीतकारों ने ही प्रदान किया । छायावाद को 'व्यथा का सबेरा' बनाने वाली कल्पना की कमनीयता व रमणीयता को त्यागकर नवगीत कवि ने बौद्धिकता की प्रतिष्ठा की है ।

छायावादी गीतों की भाव-दृष्टि प्रणय, सौन्दर्य, प्रकृति तथा दर्शन तक ही सीमित थी जबकि नवगीतों का भाव-क्षेत्र विस्तृत एवम् वैविध्यपूर्ण है । इसमें भोगे हुए आत्मपरक सत्यों का उद्‌घाटन है - "वह न तो लोक-जीवन से विमुख हुआ और न ही नागरिक जीवन से उपेक्षित, न तो राष्ट्र की भौगोलिक सीमा में बद्ध है और न ही अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों से तटस्थ । नया गीतकार अपने सम्पूर्ण परिवेश के प्रति सजग तथा अस्तित्व के प्रति व्यापक रूप से सतर्क है ।"[३३] प्रतिपाद्य की दृष्टि से नवगीतकार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि यही है कि उसने संवेदना के विभिन्न आयामों को गीतों में ढाल दिया है ।

कलात्मक उपकरणों की विशिष्टता और विविधता की दृष्टि से छायावादी गीतों ने बदलाव की क्रान्ति तो छेड़ी थी किन्तु यह क्रान्ति आहिस्ता-आहिस्ता रूढ़ता की ओर अग्रसर होने लगी जिसके फलस्वरूप गीत का रचना-शिल्प और जटिल होता गया । ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे कोमलकान्त पदावली, सारगर्भित भाषा एवम् सीमित छन्द-विधान छायावादी पहचान के मूलमन्त्र हो गये हों । साथ ही अलंकारों की अनावश्यक बोझ तथा पदों के आखिर में तुकों के 'साग्रह-प्रयोग' ने गीतों के स्वाभाविक स्फुरण के समक्ष प्रश्न-चिन्ह लगा दिया, किन्तु नवगीत ने गीतों में सरलता और स्वाभाविकता लाने के लिए छायावादी कला की उत्कृष्टता पर तीव्र प्रहार किया ।

नवगीतकारों ने अपने-अपने मौलिक छन्दों का प्रयोग कर छायावादी छन्दों के सुव्यवस्थित अनुशासन को विश्रृंखलित किया है । नवगीतकारों का चित्त और मन अलंकारों में नहीं रमा । इसका कारण कदाचिद गीत के भाव-जगत को प्राथमिकता देना रहा हो । नवगीतकार ने छायावादी कवियों की भाँति 'संगीत सिद्ध' और 'संगीत मुक्त' पद्धति को अपने गीतों में स्थान तो दिया है लेकिन आग्रह पूर्वक अपने गीतों को उस बन्धन से नहीं बांधा । उन्होने 'संगीत' का स्थान 'संलाप' को देना अपेक्षाकृत उचित समझा । नवगीत के नये बिम्ब और प्रतीक विधान ने इसकी 'गीति-कला' को अवश्य ही परिष्कृत किया है ।

मूलतः गीत होते हुए भी नवगीत छायावादी गीत-धारा से स्पष्ट पार्थक्य बनाये हुए है । इसी पार्थक्य और अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण ही वह 'नवगीत' है । छायावादी गीतों का वैशिष्ट्य और अभिजात्य नवगीत में सहज ही उन्मुख हुआ है । 'प्रसाद' के गीतों में अतीत के वैभव-विलास के गान और हृदय की धड़कनों का अंकन हुआ है । महादेवी वर्मा के गीतों में वेदना का सातत्य, अमूर्त्त के प्रति समर्पण और सांस्कृतिक सूक्ष्म चिन्तन की अभिव्यक्ति हुई है । तथा पन्त के 'गीत' शब्द की चारुता और नाद-सौन्दर्य के लिए जाने जाते हैं । भाषा के स्तर पर 'निराला' के गीतों में भी शब्दों का आधुनिक संस्कारगत विन्यास दिखायी पड़ता है । निःसंदेह, निराला सामान्य बोलचाल के शब्दों

को भी प्रयोग में लाये और व्यक्ति के बदले हुए राग-बोध को नया स्वर और व्यापक भाव-विस्तार प्रदान किये ।

महादेवी वर्मा की वैयक्तिक-चेतना की अभिव्यक्ति गीत में होनी स्वाभाविक थी, किन्तु प्रसाद और निराला की वैयक्तिक अनुभूति गीतों के अतिरिक्त जब 'कामायनी', 'आंसू', राम की शक्तिपूजा' व 'सरोज स्मृति' जैसी कथा-प्रधान प्रबन्ध-रचनाओं में व्यक्त हुई तब भी अभिव्यक्ति की अन्तर्वेदना व भावुकता गीतमय ही रही । प्रसाद, महादेवी और पन्त के गीत पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी गीत-शैली का स्पष्ट भाव लिये हुए दिखाई पड़ते हैं । स्वभावतः ये गीत शिल्प तथा भाव-धारा में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से अभिप्रेरित हैं । गीत-विधा को शिष्ट और सुसंस्कृत अभिजात्य वर्ग के घेरे से निकालकर जन-सामान्य के जीवन के निकट लाने का महान कार्य निराला कर रहे थे । छन्द मुक्ति के क्रांतिकारी और ऐतिहासिक दायित्व का निर्वाह, नित्य नये राह के अन्वेषी निराला की रचनाओं में 'गीत' की अनेक रूपाकृतियां दृष्टिगोचर होती हैं । तीसरे और चौथे दशक के दौरान निराला के लिखे गीत कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर पारम्परिक गीत से बिल्कुल भिन्न थे । उनके गीतों में संघर्षरत आदमी का स्वाभिमान, जिजीविषा, वर्षागीत में प्रकृति का उल्लास, उद्दाम श्रृंगार, सम्पूर्ण धरित्रि में यौवन का वेग, विजय का भाव और अद्भुत चित्रात्मकता का विन्यास है । वरिष्ठ नवगीतकार डा. शम्भुनाथ सिंह तथा डा. चन्द्रदेव सिंह ने निराला के जिन गीतों को नवगीत माना है, इनके पीछे उनका आग्रह शायद 'भाषा की सहजता' का है । भाषा के स्तर पर तो पन्त चाहकर भी सहज नहीं हो सकते थे । ग्रामीण परिवेश के चित्रांकन में भी उनकी भाषा, भाव एवं संवेदना की कुछ निर्धारित सीमाएं हैं । छायावादी भाषा, तटस्थ जीवन-दृष्टि तथा आध्यात्मिक संस्पर्श के कारण निराला के भी गीत विशुद्ध रूप से नवगीत की निर्धारित परिधि में नहीं आ सके । शुद्ध लौकिक, मानवीय अनुभूति से सम्पन्न, आम बोलचाल की भाषा में जीवन के सत्य को उद्‌घाटित करनेवाले गीत ही नवगीत के निकट माने गये । यथा -

"वेश-रूखे, अधर-सूखे,
पेट भूखे आज आये
हीन-जीवन, दीन चितवन
क्षीण आलम्बन बनाये ।"[३४]

छायावादी समयावधि में लिखित निराला के बहुत से गीत हिन्दी काव्य-प्रासाद में नवगीत की साफ-साफ दस्तक देते हैं -

"बांधो न नाव इस ठांव, बन्धु !
पूछेगा सारा गांव, बन्धु !
यह घाट वही जिस पर हंसकर
वह कभी नहाती थी धंसकर
आंखें रह जाती थीं फंसकर
कंपते थे दोनों पांव, बन्धु !
वह हंसी बहुत कुछ कहती थी,

फिर भी अपने में रहती थी
सबकी सुनती थी, सहती थी
देती थी सबको ढांव, बन्धु ![३५]

छायावादी गीतों में व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वातंत्र्य की आकांक्षा और भारतीय पुनर्जागरण का गंभीर स्वर भी साफ सुनायी पड़ता है । शिल्प के स्तर पर ये गीत परम्परागत गीत-धारा में अग्रिम कड़ी बनकर प्रवाहमान थे । इनमें पूर्ववर्ती गीतों की तुलना में सब कुछ नया था, पर उस समय इन्हें 'नवगीत' से नहीं नवाजा जा सका । इन्हें 'आधुनिक गीत' के रूप में पहचान मिली । नवगीत का कथ्य जीवन का यथार्थ लोक है जिसका सम्बन्ध छायावादी गीत-चेतना से नहीं जुड़ता । यहां तक कि शिल्प के स्तर पर वहां का निश्चित पद-बन्ध व संगीतमय गेयता भी नवगीत में नहीं है ।

छायावादोत्तर गीत और नवगीत :

छायावादोत्तर काव्य-धारा में प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियों ने भी गीत को पारम्परिक कथ्य और शिल्प की लीक से हटाकर उसे नया स्वरूप और नये आयाम देने का प्रयत्न किया था जिनमें से रामविलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर और अज्ञेय ने मुक्त छन्द की रचनाओं के साथ-साथ गीतों की भी रचना की थी । उनके ये गीत पारम्परिक गीतों से सर्वथा भिन्न थे । उनके ऐसे गीत 'तारसप्तक' (१९४३) तथा उनके काव्य संग्रहों - 'हरी घास पर क्षण भर', 'धूप के धान', 'शिलापंख चमकीले' आदि में प्रकाशित हुए जो उनके 'मेघमाला' नामक काव्य-संकलन में प्रकाशित हैं । तारसप्तकों से इतर के कवियों में रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', नागार्जुन और त्रिलोचन ने भी इसी दौरान कुछ नये ढंग के गीत लिखे थे जब हिन्दी काव्य-संसार में प्रयोगवाद और प्रगतिवाद का वर्चस्व था ।

नवगीत छायावादी गीत-प्रवृत्ति और छायावादोत्तर काव्य-धारा या उसकी किसी प्रवृत्ति-विशेष की प्रतिक्रिया में जन्मी काव्य-प्रवृत्ति नहीं है । नवगीत एक ऐसी काव्यात्मक चेष्टा है जिसमें पारम्परिक गीत के शास्त्रीय परिधान पर्याप्त नहीं पड़ते, और जो अपनी प्रकृति में गीत होते हुए भी अनेक बुनियादी संस्कारों से युक्त होकर अभिनव रचाव के कारण 'नवगीत' हैं । इस प्रसंग की स्पष्ट विवेचना एवं विश्लेषण के सन्दर्भ में डा. त्रिलोचन पाण्डेय का यह कथन ध्यातव्य है - ''नवगीत कविता को छायावादोत्तर सम्पूर्ण काव्य-विकास के सन्दर्भ में देखना चाहिए । इसका महत्व यह है कि इसने ह्रासोन्मुखी 'नयी कविता' एवम् 'अति यथार्थवादी कविता' के बीच एक सेतु बनाकर काव्यगत संवेदनों को जीवित रखा।''[३६]

छायावादोत्तर गीत बच्चन के यहां लोक लयों और लोक रागों की सृष्टि तथा जीवन के हर्षोल्लास तक परिसीमित रहा है । अंचल के गीत मांसल सौन्दर्य और रूप-पिपासा तथा नरेन्द्र शर्मा के गीत व्यतिगत सुख-दुःख, प्रणयानुभूति तथा प्रगतिशीलता के अर्थ में सपाटबयानी तक सीमित रहे । गोपालदास 'नीरज' के गीत या तो नियति का गान रहे, या फिर सामाजिक विद्रूपता की ऊपरी अभिव्यक्ति में सिमट कर रह गये । छायावादोत्तर गीतकारों में शिल्प के स्तर पर लय, टेक, अन्तरा व गेयता के प्रति संगीतपरक रुझान बना रहा ।

'नवगीत' जीवन की विभिन्न स्थितियों का गान है । यह कहना अनुचित या अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है कि भक्ति काव्य के बाद जीवन का समग्र विस्तारण जितना नवगीत में है, वैसा किसी अन्य समकालीन विधाओं में नहीं । इसका प्रमुख कारण कवि की लोकव्याप्त संवेदना है, जो राग की उपज है । छायावाद, छायावादोत्तर और नयी कविता के गीत क्रमशः वैयक्तिक, अभिजात, गहरी प्रणयानुभूति व वर्ग-विशेष की अतिवैचारिक अभिव्यक्ति में सीमित होकर रह गये । नवगीत ने इन बन्धनों को तोड़ा और गांव की प्राथमिक इकाई से लेकर कस्बा, नगर और महानगर तक पहुंचकर उनकी भावनाओं एवम् संवेदनाओं को आत्मसात किया । नवगीत ने जिस जीवन को साधा और स्वर दिया है, वह वर्ग-विशेष का जीवन नहीं है । उसके चरित्र नायक सर्वहारा, शोषित, पीड़ित, निम्न-मध्य और कभी-कभार उच्च-मध्यवर्ग है । आर्थिक बल पर शोषण से इकट्ठी पूंजी के बलबूते ऐंठे वर्ग की मानसिक विकृतियों का भावोच्छ्वास इसमें कहीं भी नहीं है ।

कविता अन्ततः मानवीय राग का उद्घाटन है । यह राग संवेदना का रूप लेकर विस्तार पाता है । राग-वृत्ति के संकुचन में उसकी परिणति वैयक्तिक प्रेम-विलास और सुख-दुःख के गान में होती है । राग का निषेध करने पर काव्य की सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है । वरिष्ठ समीक्षक डा. नगेन्द्र ने राग को कविता का प्रमुख उपजीव्य बताते हुए प्रयोगवादी कविता का विचार पूर्ण परीक्षण किया है - "काव्य की सार्थकता इसी में है कि वह राग को संवेदनीय बनाये,..... प्रयोगवादी कवि ने नवीनता की झोंक में इसी मूल सिद्धान्त का तिरस्कार कर काव्य के मर्म पर चोट की है, और इसका परिणाम यह हुआ है कि उसकी रचना प्रायः काव्य नहीं रह गई है ।"[३७]

नवगीत प्रयोगवादी काल की समानान्तर काव्य-धारा है । सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में आयी गत्यात्मकता धर्म और अध्यात्म-चेतना पर विज्ञान का प्रभाव, पश्चिमी दार्शनिक विचारधाराओं की जीवन विषयक नूतन दृष्टि, भारतीय चिन्तन और जीवन-पद्धति का पश्चिमी दृष्टिकोण से द्वन्द्व, आर्थिक बदहाली, औपनिवेशिक शोषण का शिकार राष्ट्र तथा परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द्व और सामाजिक व्यवस्था आदि मूल्यों में आये संक्रामक दौर ने व्यक्ति-चेतना को झकझोर दिया । जन साधारण जिस अनिश्चय, आत्मद्वन्द्व, अराजकता, बिखराव, संशय, कुण्ठा, अनास्था, अविश्वास, निरर्थकता बोध, निरीहता और सम्मुख आयीं जीवन-स्थितियों से अचम्भित था, उसकी अभिव्यक्ति नवगीत में हुई किन्तु यह अभिव्यक्ति अन्य काव्य-विधाओं से भिन्न स्तर की थी । नवगीतकार ने लय की अपेक्षा व्यक्ति-जीवन की अन्दरूनी उथल-पुथल, द्वन्द्व, जिजीविषा और तनाव का यथार्थ अंकन कर काव्योचित धर्म का निर्वाह किया है-

"नीम का पेड़
बाबा की जगह सगुन-पंछी
बूढ़ा जर्जर
आंखों में पतली स्वप्न डोर
समय का काल चक्र घूम गया
पीढ़ी दर पीढ़ी आगत की पुण्य प्रतीक्षा में
धुंआ, सड़क, कत्ल
व्यवस्था की कुर्सी की अंधी दौड़

सूखा-अकाल, अतिवृष्टि
भूख, पसीना, कालाबाजारी
घूमता हुआ काल चक्र
देश-देशान्तर तक
पिसता टूटता असक्त आदमी ।"[३८]

वर्तमान जीवन की तल्ख व कड़वे अनुभूतियों को साकार करते हुए भी नवगीत प्रयोगवादी कविता की तरह न तो अबूझ पहेली बनकर रहा और न ही पद्यात्मकता से विहीन । उसमें लय का सन्धान है भी, तो कथ्य को जोरदार बनाने और बल देने के लिए है । लय कहीं भी अभिव्यक्ति के आड़े नहीं आती बल्कि उसके पीछे चलकर उसे नवगीतात्मकता देती है । नवगीत ने लय की अवहेलना कर गीत को बदले हुए परिवेश में संक्रान्त और तनावयुक्त व्यक्ति की संवेदना को वहन करने में सक्षम बनाने के लिए सफल और जरूरी प्रयोग किये । किन्तु यह प्रयोग कथ्य को अधिक बोधगम्य बनाने की दृष्टि से था । प्रयोग के लिए किये गये प्रयोग दुरूहता और जटिलता को रचना में समाविष्ट करते हैं । नवगीत में व्यक्त मनुष्य का तनाव और संताप इसलिए भी अपना दर्द लगता है, क्योंकि वह आरोपित नहीं है । वस्तुगत यथार्थ रचनाकार में एक रस होकर अभिव्यक्त हुआ है किन्तु जिन काव्य-विधाओं में रचनाकार की आत्मकुण्ठा वस्तुजगत या काव्य-नायक के प्रति मुखरित हुआ है, वह तनाव कल्पित और अविश्वसनीय हुआ है ।

छायावादी रोमानियत का मोहभंग उस समय होता है जब प्रगतिवादी परम्परा अपने नये तेवर के साथ बुलन्दी से सिर उठाती हुई उसके मध्य से गुजर जाती है । हालांकि नवगीत प्रगतिवाद के बाद की उपज है किन्तु दोनों के मूल स्वभाव व दृष्टि-बिम्ब में अधिक फर्क नहीं है । 'नवगीत' भी प्रगतिवादी गीत-परम्परा के समानान्तर सामाजिक यथार्थ के प्रति निष्ठावान है । अन्तर केवल इतना है कि प्रगतिवादी गीतों में अपनी वैचारिक अस्पष्टता और सटीक भाषा के अभाव में सतहीपन अधिक आ गया था, जबकि नवगीत इस दृष्टि से काफी साफ-सुथरा और कदम फूंक-फूंक कर आगे बढ़ने वाला सिद्ध हुआ । इसमे दृष्टि अवश्य है किन्तु संवेदना की आंच में घुली-मिली । अतः न वह कहीं लय को तोड़ती है और न ही अलग से खड़ी होकर पाठक या श्रोता और गीत के मध्य दीवार बनकर खड़ी होती है ।

प्रगतिवादी गीतों में नवगीतों की भांति ही 'प्रेम और सौन्दर्य' के उन्मुक्त तथा स्वस्थ गीतों की रचना हुई है । दोनों प्रकार के गीतों में 'जीवन संघर्ष' को प्रमुखता प्राप्त हुई है । फर्क सिर्फ इतना है कि प्रगतिवादी गीत चूंकि राजनीति से प्रभावित थे, अतः विद्रोह, क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष की प्रमुखता होने के कारण इसमें ध्वंस की प्रवृत्ति अधिक मुखरित हुई है, जबकि नवगीत के 'जीवन-संघर्ष' में सृजनात्मक तत्व पूर्णतः विद्यमान हैं । इसी तरह शिल्पगत साम्यता' भी देखी जा सकती है । प्रगतिवाद का प्रमुख उद्देश्य राजनीतिक क्रान्ति था । अतः उसके प्रचार-प्रसार के लिए 'लोक जीवन' का आश्रय जरूरी था । परिणामतः इन प्रगतिवादी गीतकारों ने काव्य को छायावादी 'कल्पना-लोक' से 'यथार्थ-लोक' पर उतारकर गीतों के माध्यम से अपनी भावनाओं व संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की ।

नवगीत भी लोकजीवन से अनुबन्धित है। यद्यपि प्रगतिवादी गीत एवम् नवगीत के प्रतिपाद्य अलग-अलग हैं, फिर भी 'उपकरणों की उपयोगिता' ने उन्हें एक सूत्र में पिरोये रखने का भरसक प्रयत्न किया है। प्रगतिवादी गीतों में व्यंग्य का पुट तो है, किन्तु जिस बौद्धिक धरातल पर उसे परिपुष्ट किया जाता है, उसका इसमें नितान्त अभाव है। इस 'अभाव' की पूर्ति करते हुए नवगीत ने व्यंग्य का मार्ग प्रशस्त किया है; इसके बावजूद भी प्रगतिवादी गीत और नवगीत में कुछ ऐसा है जो इनके मध्य विभाजक रेखा खींचता है। जो भी हो, 'काव्य-सौन्दर्य' के अपेक्षित तत्व से विहीन यह प्रगतिवादी गीत नवगीत के समक्ष हर हालत में बौना नज़र आता है। भावों या भावनाओं के अनुकूल भाषा का प्रयोग नवगीत में स्वाभाविक रूप से हुआ है। नवगीत का प्रतीक-विधान नया किन्तु स्वस्थ है। जिस उन्मुक्तता का परिचय छन्द एवम् अलंकार के परिप्रेक्ष्य में नवगीत कवियों ने दिया है, अवश्य ही उल्लेखनीय है। नवगीत न तो किसी वाद से सम्बद्ध है, और न ही किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा इसका प्रवर्तन या प्रणयन किया गया, बल्कि यह तो विभिन्न रचनाकारों द्वारा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से अपने-अपने अनुभवों द्वारा अर्जित अद्‌भुत प्रतिभा का परिणाम था जिसे कालान्तर में 'नवगीत' संज्ञा दी गई। अतः प्रघतिवादी गीत और नवगीत के मध्य किसी तरह की विशिष्ट साम्यता का प्रश्न ही नहीं उठता। यह बात और है कि एक ही राह के अन्वेषी कहीं मिले भी हों; किन्तु वास्तव में प्रगतिवादी गीत राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित है जबकि नवगीत का विकास प्रारम्भ से ही स्वतंत्र रूप से होता आया है।

छायावादोत्तर युग में जो प्रवृत्तियां अविर्भूत हुईं, कालान्तर में वे गौण विधा बनकर तिरोहित हो गईं, किन्तु 'वैयक्तिक' प्रणय की धारा के उपरान्त 'नवगीत' ही है, जो विशुद्ध रूप में गीतात्मक चेतना से अनुस्यूत है। छायावादी सामन्ती काव्य-चेतना को लोक-शैली का स्वरूप प्रदान करने का श्रेय व्यक्तिपरक गीत धारा के कवियों को ही जाता है, जिन्होंने छायावादी दार्शनिक, काल्पनिक, वायवी, आत्मानुभूत तथा राजनीतिक चेतना से अनुस्यूत प्रगतिवादी सिद्धान्त-बोझिल सामाजिक अनुभूतियों के प्रति विद्रोह कर आत्मा के सहज और निश्छल उद्वेलन को गीतों की भावभूमि के रूप में स्वीकार किया। व्यक्तिवादी-स्वच्छन्दतावादी गीतकारों की अपेक्षा नवगीतकारों में 'अनुभूति का स्वरूप और संवेदन' सामाजिक अधिक रहा है। यद्यपि गीत की अनिवार्य शर्त 'संगीत' है, किन्तु दोनों ही गीत-धाराओं ने संगीत की शास्त्रीयता पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। शब्द-प्रयोग एवं भाषा के प्रति दोनों का दृष्टिकोण एक ही रहा है किन्तु यहां भी वैषम्य की कई रेखाएं दिखाई पड़ती हैं क्योंकि दोनों के उद्‌भव के कारणों में पर्याप्त अन्तर है।

एक ओर जहां वैयक्तिक गीत-धारा का प्रादुर्भाव छायावाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ था, वहीं नवगीत के लिए किसी प्रकार की कोई पृष्ठभूमि अथवा रणनीति तैयार नहीं थी, अपितु यह प्राचीन गीत-परम्परा के विकास की ही अगली कड़ी बनकर प्रस्तुत हुई। इसी कारण नवगीतकारों की भाव-दृष्टि की अपेक्षा व्यक्तिवादी कवियों की भाव-दृष्टि अधिक संकुचित और सीमित है। वैयक्तिक गीतकारों ने छायावाद की ही भांति पलायन, संघर्ष, मृत्यु बोध, अवसाद, विषाद आदि का चित्रांकन करते समय युग-सन्दर्भ और युग-बोध से सर्वथा अपने आपको मुक्त रखते हुए 'यथार्थता' की अपेक्षा 'कल्पना' का दामन थाम लिया। फलस्वरूप, इनके गीतों में व्यक्तिगत या निजी एहसास को भी अभिव्यक्ति मिली। लेकिन जहां व्यक्तिवादी-स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने आस-पास के अभावगत दर्द को शब्दों

में ढालने की बात की, वहां ये न केवल चूक गये बल्कि उस जगह से कतराकर निकल गये, जबकि 'नवगीत' में एक ओर जहां एकान्त क्षणों का 'निजी' एहसास मिलता है, वहां उनकी कल्पना के पंख अपने इर्द-गिर्द के अभावग्रस्त दर्द को छाया भी प्रदान करते दिखाई देते हैं ।

कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होता है कि नवगीत का निजी एहसास उसके अपने पास न होकर आस-पास छाया नज़र आता है । कदाचिद् इसी कारण वे पारम्परिक गीतों के निजी एहसास से अलग हो गए हैं । वैसे भी बिम्ब और प्रतीक के नवीनीकरण तथा छन्द के वैविध्य प्रयोग ने नवगीतों को व्यक्तिपरक गीतों से सर्वथा पृथक कर दिया है । केवल बच्चन के गीतों में आंचलिकता के सन्निवेश के कारण लोकधुनों की मौलिकता देखी जा सकती है । नवगीत में आंचलिक शब्दावली अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुआ है । निराशा, भय, पलायन तथा मृत्यु के जीवन-दर्शन को आत्मसात करने वाले वैयक्तिक गीतकारों ने जगह-जगह पर नियतिवाद की व्याख्या की है, किन्तु नवगीत का उद्देश्य मात्र आस्था, विश्वास और निरन्तर संघर्ष की ओर अग्रसर होना है । यह स्थापित सत्य है कि, 'नवगीत' ने गीत-विधा को नयी चेतना दी है, किन्तु गीत-विधा को लोकप्रिय बनाने का श्रेय वैयक्तिक गीतकारों को ही जाता है ।

छायावादोत्तर काव्य के अन्तर्गत राष्ट्रवादी सांस्कृतिक गीतों का अविर्भाव भी व्यक्तिपरक गीतों की भांति हुआ । राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गीत और नवगीत परस्पर प्रतिद्वन्दी काव्य-धाराएं हैं । नवगीत स्वतन्त्र और साहित्यिक काव्य-धारा है, जबकि राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गीत साहित्य के मंच पर प्रमुखता से उभर कर कभी प्रस्तुत ही न हो सका । यह बात और है कि आदि काल से आज तक के साहित्य में यह राष्ट्रवादी गीतधारा अंतः सलिला की तरह प्रवाहित अवश्य होती रही है । इसका मूल वर्ण्य-विषय गीतकार की 'अनुभूति' की अपेक्षा 'अभिव्यक्ति' पर निर्भर करता है । राष्ट्रवादी कवि स्वर्णिम और गरिमामय अतीत का गान एवम् वर्तमान परिवेश की व्यथा तो प्रकट करता ही है, आशावादी भविष्य का चित्रण भी करता है । दूसरी तरफ नवगीत-कवि इससे भिन्न कथ्य दृष्टिगत रखकर गीत-सर्जना करता है । उसके स्वरों में वर्तमान के संघर्ष से टकराने-जूझने का दृढ़संकल्प है । राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गीतों का शिल्पगत सौन्दर्य फ़ीका है, नवगीत की भांति उसमें नयापन दिखाई नहीं देता ।

कथ्य के अनुपात में शब्द-विन्यास के लिए छायावादोत्तर गीत अपने पूर्ववत गीतों से पृथक नहीं हैं । रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा व अंचल के गीतों में प्रायः अभिधात्मक स्वर ही मुखर हुए हैं, इसलिए छन्द-संरचना में छायावादी गीतों से भिन्न होते हुए भी वर्ण्य-विस्तार, कथन-शैली व आकार में वे नवगीतों से अधिक छायावादी गीत-परम्परा के निकट हैं । नवगीत की संक्षिप्तता का सर्वप्रमुख कारण राग और अनुभूति की सघनता है । संक्षिप्तता की यह प्रवृत्ति उसकी मितभाषी प्रकृति के कारण ही है । दर असल, मितृभाषिकता गंभीर व वजनदार व्यक्तित्व की पहचान होती है। नवगीत के अल्पकाय होने का अन्य प्रमुख कारण उनका लोकगीतों से निकट होना या अनुप्रेरित होना है । लोकगीत अपनी अनगढ़ किन्तु स्वाभाविक संरचना में अधिक-से-अधिक आठ-आठ अर्द्धालियों में व्यक्त होते हैं । कुछ लोकगीत तो मात्र डेढ़-डेढ़ या दो-दो-पंक्तियों में बुने होते हैं । इन पंक्तियों की उदात्त मनोभूमि और आवृत्ति ही इनके कथ्य को बल देती और गीत बनाती है । इस प्रकार लोकगीतों की संक्षिप्तता ने नवगीतों के कलेवर को प्रभावित किया हो, यह सहज संभव है ।

छायावादोत्तर गीतों में मात्र हरिवंश राय बच्चन के यहां देशी शब्दों का अतिरिक्त सजग विन्यास मिलता है । बच्चन की अपेक्षा धर्मवीर भारती के गीतों में देश-सन्दर्भ लिए अनेक लोक-शब्दों की महक में सहज रचाव और अधिक गमक है । यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है जिसके कारण भारती के गीत 'नयी कविता' के गीत-परम्परा से अलग नवगीत की कड़ी बनते हैं ।

नयी कविता और नवगीत :

'नयी कविता' और 'नवगीत' शब्द प्रायः विद्वजनों के लिए विवादित विषय बनते रहे हैं । एक तो परस्पर समकालीन काव्य-धारा होने के कारण और दूसरे, 'नयी' और 'नव' विशेषण के कारण । एक आलोचक वर्ग 'नवगीत' को नयी कविता की प्राण-वायु के रूप में प्रतिष्ठित करता है, तो दूसरा, नवगीत को नयी कविता के 'समानान्तर' मानता है । कुछ विचारक नयी कविता और नवगीत को परस्पर पूरक मानते हैं, तो कुछ 'नवगीत' को नयी कविता की 'छन्दोबद्ध अनुकृति' । इसलिए इनके अन्तर को स्पष्ट करने से पहले उत्पन्न तद्‌विषयक भ्रान्तियों और उनके कारणों का विश्लेषण करना अत्यावश्यक हो जाता है ।

नयी कविता का इतिहास इस तथ्य का साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि सन् १९३८ ई. में तारसप्तक के प्रकाशित होते ही जिस 'प्रयोगवादी' आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ, उसी के रूप में नयी कविता का अविर्भाव मान लिया गया । प्रयोगवाद के दौरान ही कवियों के हृदय में काव्य की समस्त विधाओं को त्याज्य मानकर केवल 'कविता' रूप की ही प्रतिस्थापना की गई । परिणामतः इस 'कविता' से हटकर लिखने वाले कवि को भय था कि उसकी रचना को कहीं 'बासी' और 'युगीन परिप्रेक्ष्य के प्रतिकूल' न घोषित कर दिया जाये । इसीलिए जो मूलतः गीतकार थे, गीति-रचना का पहलू छोड़, कविता-सृजन मे संलग्न हो गये । किन्तु प्रकृति के विरूद्ध कार्य कर पाने में असमर्थ यहीं कवि-मन कुण्ठा और हीनता से ग्रस्त हो गीत को ही 'नयी कविता का परिधान' पहनाने का षड्‌यन्त्र करने लगे । इस प्रकार जहां 'गीत' गीति-परम्परा से हटकर सृजित होने लगे, वहीं वे 'नयी कविता' से भिन्न होते हुए भी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नयी कविता के समानान्तर चलते प्रतीत होने लगे । संभवतः इसी कारण यह मान लिया गया कि 'नवगीत' का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं, बल्कि वह तो नयी कविता का ही एक महत्वपूर्ण अंश है । वस्तुतः साहित्यिक सम्मेलनों व गोष्ठियों में 'नवगीत' पर चर्चा किया जाना व्यर्थ समझा गया । लेकिन नयी कविता द्वारा उपेक्षित यह 'नवगीत' गीतों का पुनरुत्थान कर अपने 'स्वतन्त्र अस्तित्व' के लिए प्रयास करने लगा । 'नवगीत' और 'नयी कविता' की प्रवृत्तिगत साम्यता के कारण नवगीत को नयी कविता की श्रृंखला का एक अंग कहा जाने लगा । प्रयोगवाद के प्रणेता अज्ञेय ने नवगीत को नयी कविता के अन्तर्गत ही समाविष्ट माना है - "नयी कविता और नवगीत के इस प्रकार के नामों से तो एक कृत्रिम विभाजन ही आगे बढ़ेगा और कविता की प्रवृत्तियों को समझने में बाधा ही अधिक होगी ।"[३९] वरिष्ठ गीतकार शम्भुनाथ सिंह की दृष्टि में - 'कविता और नवगीत के उदय होने की परिस्थितियां एक-सी थीं । 'नयी कविता', छायावादी, प्रयोगवादी और प्रगतिवादी भाव-बोधों से भिन्न आधुनिक भाव-बोध की कविता है, और नया गीत उसी का अंश है।' उनकी मान्यता है कि, "नवगीत", नयी कविता होते हुए भी उससे भिन्न नज़र आता है । क्योंकि नयी कविता के लिए मुक्त छन्द की परिपाटी रूढ़ हो चुकी है । कथ्य व शिल्प-सम्बन्धी कुछ विशेष

पद्धतियां भी नयी कविता में रूढ़ियों का रूप धारण करती जा रही है। किन्तु नवगीत में अभी शिल्पगत रूढ़ियां नहीं बन पायी हैं, इस कारण उसमें नयी कविता की अपेक्षा अधिक ताज़गी और नयापन है। इस दृष्टि से नवगीत नयी कविता का वह पक्ष है, जो इसे निरन्तर नयापन और ताज़गी देता रहेगा।''[४०] गिरिजा कुमार माथुर भी ऐसा ही मानते हैं- ''मैं यह नहीं मानता कि, प्रगीत का नयी कविता में स्थान नहीं..... नयी कविता के बहुत से अंशों में पर्याप्त रूप से प्रगीतात्मक तत्व तथा रसमयता है।''[४१] किन्तु धर्मवीर भारती को तो विश्वास ही नहीं कि, नवगीत का जन्म हो चुका है और उसकी स्थापना भी हो चुकी है - ''क्या नवगीत (यदि वह है, और यदि वह स्थापित हो चुका है ?) तो नयी कविता से वह अलग कहां है, यह अभी मेरे सामने स्पष्ट नहीं है ।''(४२) नये गीतकारों में देवेन्द्र कुमार लिखते हैं - ''नवगीत नयी कविता की आन्तरिक विवशता है, औपचारिकता नहीं, जो जीवन की गद्यात्मकता को तोड़कर उसमें छिपी कोमल मानवीय अनुभूति को खींचकर बाहर लाता है और जिन्दगी के सीधे सम्पर्क को स्थापित करता है । नवगीत नयी कविता की ही अंगरंग है ।''[४३] माहेश्वर तिवारी भी देवेन्द्र कुमार की इस उक्ति का समर्थन करते हैं - ''नया गीत नयी कविता की भीतरी संवेदना का अभिव्यक्त रूप है, उसके खुरदरे व्यक्तित्व के भीतर मुलायम पर्त है । वह अपने में कोई स्वतन्त्र विधा नहीं है, और न ही नयी कविता के आगे की कोई उपलब्धि है ।''[४४]

नयी कविता और नवगीत के साथ-साथ विकसित होने के कारण इनमें पर्याप्त प्रवृत्तिगत साम्यता नज़र आती है । किन्तु नवगीत की स्थिति नयी कविता से भिन्न है । नवगीत की अपनी विशिष्टताएं हैं, जो नयी कविता में न तो थीं और न हैं । नवगीत की छान्दसिक लयात्मकता और गेयता भारत की सुदृढ़ साहित्यिक परम्परा की आधुनिक ऊर्जा और प्राण है । नवगीत में छन्द और लय के अतिरिक्त जो विशिष्ट काव्यात्मकता है, वह उसे नयी कविता के अधिकांश बोझिल काव्य से पृथक करती है। नवगीत सहृदयता से परिपूर्ण है, फिर भी मशीनीयुग की संवेदनाओं से सराबोर । जबकि नयी कविता आज भी व्यक्ति की तलाश में भटकती फिर रही है । 'नवगीत' का अपना व्यक्तित्व है । वह अपने कृतित्व के आधार पर अपनी परम्परा से संयुक्त होकर आज की औद्योगिक जटिलता को आत्मसात करते हुए वर्तमान पाठक और श्रोता तक पहुंचा है । नयी कविता या अकविता के रूढ़ मानदण्डों के आधार पर नवगीत का मूल्यांकन संभव नहीं । शम्भुनाथ सिंह का इस सम्बन्ध में मानना है कि, ''नवगीत एक सापेक्षिक शब्द है । नवगीत की नवीनता युग सापेक्ष्य होती है । किसी भी युग में नवगीत की रचना हो सकती है । गीत-रचना की परम्परागत पद्धति और भाव-बोध को छोड़कर नवीन पद्धति और नवीन भाव-सरणियों को अभिव्यक्त करने वाले गीत जब भी और जिस युग में लिखे जाएंगे, नवगीत कहलाएंगे ।''[४५]

आलोचकों का एक अन्य वर्ग नवगीत एवम् नयी कविता को समानान्तर काव्य-प्रवाह मानता है । ठाकुर प्रसाद सिंह नवगीत और नयी कविता को विभिन्न मनःस्थितियों और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का काव्य मानते हैं । - ''नयी कविता की बौद्धिकता तथा नये गीतों की हार्दिकता को परस्पर एक-दूसरे का पूरक मानते हुए भी यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि ये दोनों दो भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों और परिस्थितियों के काव्य हैं ।''[४६] डा. नामवर सिंह भी गीत और कविता दोनों के स्वतन्त्र अस्तित्व की संकल्पना करते हैं - ''मेरे खयाल में गीतों की सार्थकता सच्चे अर्थों

में गीत होने में है। नयी कविता की होड़ में बेडौल मुक्त छन्द होने और बिम्ब आदि की जटिलता की ओर दौड़ने में नहीं।''[४७] डा. महावीर प्रसाद दधीच भी दावा करते हैं कि, ''नवगीत, नयी कविता हो ही नहीं सकता। उसका एक अंग भी होना उसके लिए कठिन है। नवगीत को नयी कविता होना भी नहीं चाहिए। नवगीत को नयी कविता बनाने का प्रयत्न ही आत्मघाती सिद्ध होगा।''[४८]

नयी कविता की अनेक वस्तुगत व रूपगत उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए भी यह कहते बड़ा दुःख होता है कि उसके कतिपय फैशन परस्त अति आधुनिकतावादी कवियों ने अपनी विभिन्न संकीर्णताओं के कारण उसे जातीय संस्कारों से हीन करके उसके सामर्थ्य को क्षीण कर दिया है। उस सामर्थ्य को, जो उसे हिन्दी से इतर काव्य-कृतित्व के समक्ष एक विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्पन्न रूप में प्रस्तुत करती। नयी कविता जिस प्रकार केवल नागरिक परिवेश का ही व्यक्त रूप नहीं है, उसी प्रकार नवगीत भी सिर्फ ग्राम्य-चित्रण ही नहीं है। उसकी वस्तु साठोत्तर अन्य काव्यान्दोलनों की भांति आयातित वस्तु नहीं है। नवगीत-कवि का बोध हमारे जातीय संस्कारों का वास्तविक बोध है, जो समकालीन जीवन-मूल्यों से भी बहुत गहरा जुड़ा हुआ है। नवगीत न तो नयी कविता का विरोधी है और न ही किसी अन्य साहित्य-रूप का, बल्कि वह तो आज के यथार्थ मनुष्य की प्रामाणिक रागानुभूतियों का एक आधुनिक काव्यात्मक दस्तावेज है। नवगीत आधुनिक है, क्योंकि 'आधुनिकता' मेरे समझ से, कोई निषेधात्मक मूल्य नहीं है। जीवन के आन्तरिक एवम वाह्य परिवर्तनों का प्रत्यक्ष या परोक्ष संस्कार रूप ही आधुनिकता के नाम से अभिहित होता है।

आलोचकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो उपर्युक्त विचारों से साम्य नहीं रखता, अपितु 'नवगीत' और 'नयी कविता' को एक-दूसरे का 'पूरक' मानता है। आधुनिक युग-बोध की अभिव्यक्ति के लिए उन्होने दोनों की संयुक्ति की अनिवार्यता पर बल दिया है। डा. रवीन्द्र भ्रमर की दृष्टि में - ''नवगीत को नयी कविता के विरोध में ग्रहण करना एक भ्रान्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। नवगीत के विकास-इतिहास में प्रयोगशील कविता का पर्याप्त योग रहा है। नवगीत वस्तुतः नयी कविता का 'पूरक' है। उसने समकालीन हिन्दी-कविता को एकांगी पक्षघाती होने से बचा लिया है।... दोनों वर्तमान कविता की श्रृंखलाएं हैं और दो स्वतन्त्र प्रकार के भाव-क्षणों का अंकन करने के लिए दोनों की समान रूप से आवश्यकता है। मन को आन्दोलित कर देने वाले रागात्मक क्षणों की अभिव्यक्ति के लिए गीत-रूप जारी है तो वैज्ञानिक यथार्थ से परिचालित विवेकशील अनुभूतियों के लिए नयी कविता का सृजन अपेक्षित है।''[४९] इस प्रकार रवीन्द्र भ्रमर वर्तमान कविता को दो श्रृंखलाओं के रूप में नयी कविता और नवगीत को ग्रहण करते हैं। डा. दरश मिश्र भी ऐसा ही मानते हैं - ''नवगीत, नयी कविता का पूरक है, अर्थात 'नवगीत' आज के समूचे कथ्य को अभिव्यक्ति नहीं दे सकता। अतः नवगीत नयी कविता की सहवर्ती है, विरोधी नहीं.....।''[५०] इसका समर्थन करते हुए भवानी प्रसाद मिश्र भी कुछ ऐसा ही कहते हैं - ''कविता और नयी कविता, गीत और नवगीत, ये एक-दूसरे के विरोधी नहीं, एक-दूसरे के सहायक हैं और सम्भव है कि नयी कविता और नये गीत अब तक की कविता और अब तक के गीत से आगे बढ़ने की बैशाखियां भी हैं।''[५१]

कुछ विद्वान आलोचक यह दावा करते हैं कि, ''नवगीत' नयी कविता की छन्दोबद्ध अनुकृति है, किन्तु यह सर्वथा भ्रमपूर्ण है। नयी कविता का ही एक अंग नवगीत भी है। अतः अंग अंगी

का अनुकरण भला क्या करेगा । अंगी नियामक होता है और अंग उसके अनुरूप कार्य करते हैं । अतः नवगीत के अनुकृत काव्य होने का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता । यह सच है कि नवगीत का विकास नयी कविता के समानान्तर ही हुआ । नवगीत और नयी कविता में जो अन्तर है, वह कवि की अनुभूति का ही है । बहुत से नयी कविता के कवि नवगीतकार भी हैं । सदा से ही यही स्थिति रही है । प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी वर्मा आदि ने कविताएं भी लिखीं और सशक्त गीत भी। एक भाव है जो गीत के रूप में फूटना चाहता है, तो दूसरा, कविता के विस्तार में व्यक्त होना चाहता है ।

यह निर्विवाद सत्य है कि नवगीत और नयी कविता दोनों समकालीन काव्य-प्रवृत्तियां हैं । सिर्फ इतना ही नहीं, इनकी दृष्टि में युग-सन्दर्भ के अनुरूप काफी कुछ समानताएं भी हैं, लेकिन कुछ नयी कवितावादियों द्वारा नवगीत को अपने से अलग करने के पीछे रचे जा रहे षड्यन्त्रों में वे स्वयं ही उलझने लगे थे । निःसंदेह, 'नवगीत' युग-बोध की दृष्टि से गीति-परम्परा के विकास की ही एक (अगली) कड़ी है, जिसने बदलते हुए जीवन-मूल्यों में अपनी परम्परा को नयी गति, नयी चेतना और संवेदना के विभिन्न आयाम दिये । 'नवगीत' शब्द के प्रयोक्ता ने भी इसे नयी कविता का पूरक मानते हुए इनके तत्वों पर टिप्पणी की है - "नयी कविता के अनेक कवि भी गीत रचना करते हैं और उनके गीतों में 'टेकनीक' की आधुनिकता तो रहती है, वैयक्तिक कविता का प्रायः अभाव ही रहता है, फिर भी वे पूर्वागत निकायों के गीतकारों का विरोधी अपने को ही समझ लेते हैं, आश्चर्य है..... प्रगति और विकास की दृष्टि से इन रचनाओं का मूल्य है, जिनमें 'नयी कविता' के पूरक बनकर 'नवगीत' का निकाय जन्म ले रहा है । नयी कविता के यदि सात मौलिक तत्व हैं - ऐतिहासिकता, सामाजिकता, व्यक्तित्व, समाहार, समग्रता, शोभा और विराम, तो पूरक के रूप में नवगीत के भी पांच विकास-शील तत्व हैं - जीवन-दर्शन, आत्मनिष्ठा, व्यक्तित्व-बोध, प्रीति तत्व और परिसंचय ।"[५२] इन मौलिक बिन्दुओं पर यदि तात्विक दृष्टि से आनुपातिक विचार किया जाये तो बात स्वयमेव स्पष्ट हो जाएगी।

नयी कविता बौद्धिक धरातल पर विचरण करती हुई विकास के पथ पर अग्रसर हो पायी है। यह 'बौद्धिकता' दुरूहता और क्लिष्टता से सर्वथा दूर रागात्मक भावों को आत्मसात किये हुए है । डा. जगदीश गुप्त कहते हैं - "कुछ नये कवि ऐसे हैं जिनकी कविता 'रागात्मकता' को पर्याप्त महत्व देती है । व्यक्तिगत रूप में मुझे विश्वास है कि भविष्य में हिन्दी-कविता बुद्धि और हृदय, विचार और राग के बीज संतुलन स्थापित कर सकेगी और उसे जन रूचि का आश्रय भी मिलेगा ।"[५३] नयी कविता बौद्धिकता की छाया में विकासशील रही है, इसी कारण उसमें आलोचनात्मक प्रवृत्ति अन्तर्निहित प्रतीत होती है । यथार्थ चित्रण का आग्रह, सूक्ष्म व्यंग्य तथा शैलीगत वैचित्र्य एक नवीन अर्थ को ध्वनित करने वाला अभिनव प्रतीक-विधान आदि जिन्हें नयी कविता की प्रमुख विशेषता कहा जा सकता है, सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है । 'बौद्धिकता' को गीत के लिए वर्जित मानना अनुचित है क्योंकि वह नयी उपलब्धियों से परिपूर्ण है । बौद्धिकता के कारण ही गीतों में आधुनिकता युगबोध और संवेदना के नवनिर्मित धरातलों को समाविष्ट किया जा सका है । बाल स्वरूप 'राही' ने बौद्धिकता एवम् हार्दिकता के सामन्जस्य द्वारा ही 'नवगीत' की उत्पत्ति मानी है - "मेरी कोशिश यह है कि, वस्तु तो बौद्धिक हो क्योंकि वह हमारे युग की सच्चाई के अधिक निकट होगी किन्तु

अभिव्यंजना रागात्मक होनी चाहिए..... बौद्धिक अनुभूतियों को पचाकर उन्हें संवेदनात्मक बनाकर ही मैं प्रस्तुत करना चाहता हूँ ।''[५४] उनका मानना है कि, 'बौद्धिकता' का परिणाम 'व्यंग्य' है, किन्तु जब उसका समंजन रागात्मकता से हो जाता है तो 'व्यंग्य' सहानुभूति में परिवर्तित हो जाता है । इसी कारण नयी कविता और नवगीत परस्पर विरोधी प्रकृति के होते हुए भी पूरक प्रतीत होते हैं । 'परस्पर पूरकता' की आगामी कड़ी इनकी ग़ैर रोमानी दृष्टि है । नयी कविता और नवगीत दोनों रोमांस विरोधी (anty Romantic) हैं और स्वप्नविमुख वैज्ञानिक यथार्थ को विषय के रूप में ग्रहण करते हैं । प्रौढ़ता के लिए जिस गुण का उल्लेख हमने नयी कविता की उपलब्धि के सन्दर्भ में किया है, वह आधुनिक गीत का प्राण तत्व है । ''भावुकता का कोई भी रूप आधुनिक गीत को स्वीकार्य नहीं है, चाहे यह भावुकता रोमानी हो या आदर्शों के प्रति ।''[५५] इसमें जरा भी संदेह नहीं कि 'कुण्ठित' और 'विक्षिप्त' युगबोध ने एक ओर रोमानी भावनाओं को अपंग और सारहीन कर दिया था तो दूसरी ओर वह भावी गीत की सम्भावनाओं को भी निःशेष कर रहा था किन्तु इस 'एन्टी रोमान्टिक' गीत की संभावनाओं को रूप देने के साथ-साथ कवि-कल्पना के अनावश्यक और निरर्थक भटकाव को उसने नियंत्रित भी किया है ।

नवगीत की बौद्धिकता के सन्दर्भ में डा. शम्भुनाथ सिंह का मत भिन्न है । वे कहते हैं कि, 'नवगीत' को भावुकता पूर्ण अथवा बौद्धिकता पूर्ण मान लेना कुछ लोगों का केवल भ्रम ही है । ''नयी कविता पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसमें अत्यधिक बौद्धिकता आ गई है । उसी तरह 'नवगीत' को भी कुछ लोग गीत मानते ही नहीं, क्योंकि, उनके अनुसार - उसमें 'गीति-काव्य' के अनुरूप भावुकता और रोमानियत नहीं है । ऐसे लोग नवगीत को भी बौद्धिकता से बोझिल मानते हैं । पर जैसा पहले कहा जा चुका है - 'नवगीत' नयी कविता की भांति उत्तरोत्तर अधिक अबौद्धिक होता जा रहा है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि उसमें पुराने छायावादी गीतों जैसा लिजलिजापन बढ़ रहा है । नवगीत न तो भावुकतापूर्ण है, न बौद्धिकता पूर्ण । उसमें भावुकता का बहिष्कार तो प्रारम्भ से ही होने लगा था, अब अबौद्धिकीकरण की प्रवृत्ति भी तेजी से बढ़ रही है । सूक्ष्म कथ्य और दुरूह प्रतीकों के कारण उसमें अस्पष्टता होती है, उसी को कुछ लोग बौद्धिकता का स्पर्श कहते हैं ।''[५६]

किन्तु नवगीत की बौद्धिकता के प्रति प्रतिनिधि नवगीतकार वीरेन्द्र मिश्र का रुख कुछ नर्म प्रतीत होता है - ''सच तो यह है कि विषय की पकड़ और अभिव्यक्ति की सफलता पर सब कुछ निर्भर है । यदि अभिव्यक्ति में कवित्व है तो कोई विषय वर्जित नहीं है और नहीं तो सर्वविदित है कि, घिसे-पिटे विषयों पर घिसी-पिटी अभिव्यक्ति होती रही है । 'बौद्धिकता' को गीत के लिए वर्जित नहीं माना जा सकता क्योंकि वह नयी उपलब्धियों से पूर्ण है । नवगीत में उसका भी स्थान है, यद्यपि वह सर्वस्व नहीं ।''[५७] और श्री माहेश्वर तिवारी कहते हैं - ''नवगीतों में बढ़ती बौद्धिकता से गीतात्मकता को कोई खतरा कम-से-कम मैं नहीं मानता और अगर है भी तो वह 'नवगीत' के लिए न होकर कुछ इतर गीत-कवियों के लिए है ।''[५८] प्रो. श्रीकान्त जोशी के अनुसार-''यहां यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि 'संगीत' भाव का ही नहीं होता, विचार का भी होता है । नवगीत ने विचार के संगीत को भी प्रस्तुत किया है ।''[५९]

एक ओर 'नयी कविता' पर जहां पाश्चात्य कवियों - टी. एस. इलियट, डी. एच. लारेन्स, एजरा पाउण्ड के चिन्तनों का प्रभाव है, वहीं दूसरी ओर उनकी प्रवृत्तियों में बिम्बवाद, प्रतीकवाद, अस्तित्ववाद, अतियथार्थवाद का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है । जबकि, 'नवगीत' में दर्शन पक्ष इतना विवेच्य नहीं है क्योंकि उसे न भारतीय दर्शन ने इतना प्रभावित किया और न ही पाश्चात्य दर्शन ने । नवगीत का अविर्भाव मूलतः अपने युग-सन्दर्भ की सामाजिकता से हुआ जो अपनी गीतात्मकता में युगीन धड़कन को लय देने में समर्थ हुआ । परिणामतः नवगीत प्रगीत-परम्परा में एक 'अभिनव-सोपान' सिद्ध हुआ। बदलते परिवेश और बदलते हुए सामाजिक एवं साहित्यिक मूल्यों में गीति-परम्परा का स्वर दबता चला जा रहा था । 'मूलतः हर कवि गीतकार होता है' - इस संस्कार जन्य प्रवृत्ति को भूलकर कवियों ने गीत-रचना छोड़ दी थी । तदनन्तर जो 'नवगीत' रूप में उभर कर सामने आया, उसमें आधुनिकता के प्रति आग्रह और परम्परा के प्रति विद्रोह तो है किन्तु उसमें अपनी परम्परा के प्रति आदर और संस्कार के भाव भी हैं । इसके विपरीत 'नयी कविता' में ऐसा कुछ नहीं है । उसका मूल उत्स पाश्चात्य साहित्य व दर्शन रहा है, फलतः उसमें परम्परा के प्रति विद्रोह एवम् आक्रोश अधिक है, जिसने उसे भारतीय काव्य-संस्कारों से वंचित कर दिया है ।

नवगीत का आग्रह, आधुनिकता की ओर तो अवश्य है, लेकिन उसने अपने जातीय संस्कारों को धूमिल नहीं होने दिया । अतः नवगीत आज की कविता का एक ऐसा रूप है जो पूर्वापर निष्ठा, संवेदना और विशुद्ध मानवीयता से युक्त पूर्ण यथार्थ से साक्षात्कृत अनुभूतियों की काव्याभिव्यक्ति है । आज वस्तुतः उसी के माध्यम से वास्तविक हिन्दी-कविता की खोज की जा सकती है । नयी कविता और नवगीत दोनों काव्य-धाराओं में यथार्थ का चित्रण मिलता है किन्तु जहां 'नवगीत' का यथार्थ चित्रण संयत, व्यवस्थित, संतुलित और स्वस्थ है, वहीं - नयी कविता का यथार्थ असंयत, अव्यवस्थित, घृणित और कुत्सित यौन-चित्रों से परिपूर्ण है । नवगीत ने बौद्धिकता की दुरूहता और क्लिष्टता से उभरे रहने के लिए 'हार्दिकता' से सम्बन्ध-सूत्र जोड़ लिया, इसलिए उसके प्राण-तत्व 'संगीत' और 'लय' की रक्षा भी संभव हो पायी । नयी कविता में 'बौद्धिकता का आग्रह होने से जहां वह अन्य काव्य-धाराओं में अपना वैशिष्ट्य प्रतिस्थापित करती है, वहीं 'आवेश' और 'भावान्विति' को उपेक्षित कर जाती है । इसी बौद्धिकता के अतिरेक का परिणाम है कि नयी कविता की अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही 'गद्यात्मक' बनकर रह गई है । 'गद्यात्मक' वृत्ति के विरोध में ही शायद नवगीत का उदय हुआ । अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जहां नयी कविता और नवगीत एक-दूसरे के परस्पर पूरक बनकर काव्य-जगत में अवतरित हुए, वहीं 'स्वतन्त्र अस्तित्व' के रूप में भी वे प्रतिस्थापित हैं।

अध्ययन से पता चलता है कि, 'नवगीत' और 'नयी कविता' समानान्तर काव्य-धाराएं होकर भी परस्पर विरोधी नहीं है । विशेषकर नयी कविता वादियों का नज़रिया नवगीत के प्रति भले संकुचित हुआ हो किन्तु नवगीत के पक्षधरों का दृष्टिकोण नयी कविता के प्रति संकुचित नहीं हुआ है ।

संदर्भ सूची :-

१. सुबह रक्त पलाश की (भूमिका)
२. जहीर कुरेशी : नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ ११३
३.
४. आहत हैं वन : कुमार रवीन्द्र
५. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' : मधुमती, मई १९८४
६. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृष्ठ १०
७. ठाकुर प्रसाद सिंह : वंशी और मांदल, पृष्ठ ४४
८. उमाकान्त मालवीय : मेंहदी और महावर, पृष्ठ ३०
९. उमाकान्त मालवीय : नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ ६१
१०. अनूप अशेष : नवगीत दशक-२, पृष्ठ ३५
११. श्याम सुन्दर दुबे : यात्रा में साथ-साथ (सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'), पृष्ठ ६२
१२. हिन्दी साहित्य कोश भाग-१ (सं. डा. धीरेन्द्र वर्मा)-पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ २५७
१३. वही, पृष्ठ २५७
१४. वही, पृष्ठ २५७
१५. रमेश रंजक : हरापन नहीं टूटेगा, पृष्ठ ५४
१६. कर्ण सिंह चौहान : साहित्य के बुनियादी सरोकार, पृष्ठ ११४
१७. रमेश रंजक : हरापन नहीं टूटेगा, पृष्ठ १५
१८. राजेन्द्र प्रसाद सिंह
१९. डा. विनोद निगम : भव्य भारती, (नवगीत शिखर : १९९९, सं. डा. विष्णु विराट), पृष्ठ ३२
२०. रमेश रंजक : इतिहास दुबारा लिखो
२१. डा. विनोद निगम : भव्य भारती (नवगीत शिखर अंक १९९९), पृष्ठ ३१
२२. डा. वेदप्रकाश अमिताभ : वही, पृष्ठ १३
२३. डा. वेदप्रकाश अमिताभ : वही, पृष्ठ १३
२४. डा. वेदप्रकाश अमिताभ : वही, पृष्ठ १३
२५. अमरनाथ श्रीवास्तव : वही, पृष्ठ ३५
२६. डा. विष्णु विराट : वही, पृष्ठ ४१
२७. रमेश रंजक : हरापन नहीं टूटेगा
२८. विद्यानन्दन राजीव : सार्थक (सं. मधुकर गौण) १९९९, पृष्ठ १९
२९. अश्वघोष : भव्य भारती (नवगीत शिखर अंक १९९९), पृष्ठ १४
३०. रमेश रंजक : हरापन नहीं टूटेगा, पृष्ठ ८४

MEHTA LIBRARY
University of Baroda

३१. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत - संवेदना और शिल्प, पृष्ठ ३१७
३२. विश्वनाथ प्रसाद : नये पुराने (सं. दिनेश सिंह) सितम्बर १९९८, पृष्ठ १२१
३३. पांच जोड़ बांसुरी (सं. चन्द्रदेव सिंह) : भूमिका
३४. बेला (संग्रह) : निराला
३५. नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ २८७
३६. डा. त्रिलोचन पाण्डेय : छायावादोत्तर हिन्दी-कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां, पृष्ठ १६५
३७. डा. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, पृष्ठ १२४
३८. अनूप अशेष : लौट आएंगे सगुन पंछी , पृष्ठ ५, ६
३९. अज्ञेय : कविता, १९६४ (अलवर) प्रस्तुति
४०. विमर्श (१९७२) अंक-४, पृष्ठ ३७
४१. गिरिजा कुमार माथुर : नयी कविता, सीमाएं और सम्भावनाएं, पृष्ठ ११७
४२. वातायन : आज का गीत (पत्र गोष्ठी-अप्रैल १९६५), पृष्ठ ६६
४३. देवेन्द्र कुमार : उत्कर्ष (कविता विशेषांक) - १९६७, पृष्ठ १२८
४४. माहेश्वर तिवारी : सम्बोधन (अक्टूबर १९६६)
४५. कविता : १९६४, पृष्ठ ७८
४६. ठाकुर प्रसाद सिंह : आलोचना (स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य-विशेषांक) १९६५ - पटना
४७. डा. नामवर सिंह : गीत, सरलता की ओर (गीत-१, दिल्ली), पृष्ठ ३८
४८. डा. महावीर प्रसाद दधीच : आधुनिकता और भारतीय परम्परा (गीत : एक विवेचन), पृष्ठ ९३
४९. रवीन्द्र भ्रमर : धर्मयुग, २ जनवरी १९६६, पृष्ठ १७
५०. डा. राम दरश मिश्र : कविता - १९६४, पृष्ठ १८
५१. भवानी प्रसाद मिश्र : गीत को अभी पंख देने हैं (गीत-१), पृष्ठ ३६
५२. गीतांगिनी (५ जनवरी १९५८), पृष्ठ ३-४
५३. डा. जगदीश गुप्त : नयी कविता का स्वरूप और सम्भावनाएं, पृष्ठ १०२
५४. बाल स्वरूप राही : नया गीत (धर्मयुग-२० मार्च १९६६), पृष्ठ १७
५५. वही, पृष्ठ १७
५६. विमर्श : १९७२ (अंक-४), पृष्ठ ३९
५७. वही, पृष्ठ ३९
५८. वही, पृष्ठ ३९
५९. वही, पृष्ठ ३९